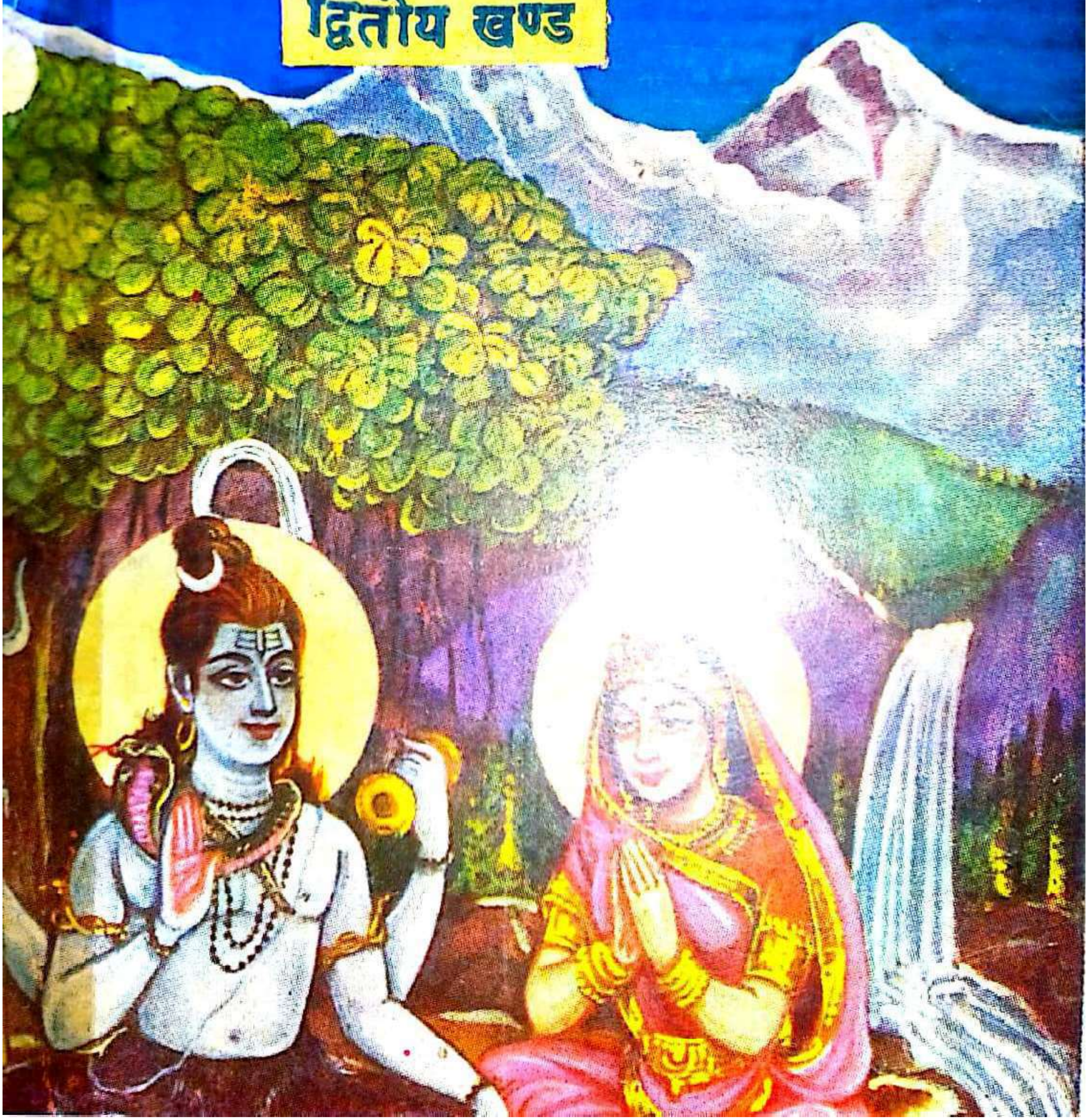
नस-मन्दाकिनी

द्वितीय खण्ड



मानस-मन्दाकिनी

(द्वितीय खण्ड)

●

लेखक —
श्रीसुदर्शन सिंह 'चक्र'

●

●

प्रकाशन–विभाग
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा-संस्थान,
मथुरा–२८१००१

विषय सूची

पृष्ठ सं०

अन्धा कथा-वाचक

'गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन ।
नयन अमिय दृग दोष बिभंजन ॥
तेहि कर बिमल विवेक बिलोचन ।
बरनउँ राम चरित भव मोचन ॥'

'उसी दिन मेरा पुनर्जन्म हुआ ।' नेत्रोंके अश्रु-प्रवाहको उत्तरीयके छोरसे पोंछते हुए उन्होंने कहा— 'पता नहीं किस पूर्व पुण्यके प्रभावसे मैं उन महामहिमके श्रीचरणोंमें पहुँचा था ।'

मेरे नेत्र भी शुष्क नहीं थे ; किन्तु मैं निश्चिन्त था । कथा-वाचकजीके ज्योति-हीन नेत्र उन्हें देख नहीं सकते थे । दूसरोंके सम्मुख रोनेमें मुझे बहुत सङ्कोच होता है । मैं मौन था , क्योंकि मैं जानता था कि बोलते ही मेरी गद्गद वाणी मेरा भेद खोल देगी ।

मैंने उनसे बहुत सुन्दर , बहुत विद्वान् , बहुत सुरीले और बहुत मननशील कथा-वाचक देखे हैं । मुझे कथा सुननेका व्यसन है और आस-पास कोई भी कथावाचक ऐसा नहीं आया , जिसकी कथा मैंने न सुनी हो । इतना होकर भी आज मैं जितना प्रभावित हुआ हूँ , जीवनमें उतना प्रभाव मुझपर कभी न पड़ा ।

सबकी भाँति मैं भी कथामें इसी कुतूहलवश गया था कि देखें, एक अन्ध व्यक्ति किस प्रकार कथा बाँचता है। सचमुच कौतुककी बात थी ही। मेरे पहुँचनेपर व्यासासन भूषित हुआ। साथका सेवक सहायता कर रहा था। व्यासके आसन ग्रहण करनेपर सम्मुख रखे ग्रन्थपर चन्दन, अक्षत, पुष्प-माल्य चढ़े और व्यासजीपर भी। अन्त तक ग्रन्थ सम्मुख रखा ही रहा। उसे खोलकर कथावाचक क्या करते उनके नेत्रोंमें दृष्टि नहीं थी।

न गायन, न पाण्डित्य। पूरा श्रीरामचरितमानस सम्भवत: कण्ठ होगा उन्हें। कम-से-कम यह आजकी कथाका लक्ष्मण-शक्ति प्रसंग तो कण्ठ है ही। बड़े सीधे ढंगसे चौपाई पढ़कर वे अर्थ कर देते थे—बड़ा सीधा अर्थ। लेकिन ऐसा लगता था, जैसे वह अर्थ मेरे हृदयमें एक विचित्र प्रकाश कर देता है। जैसे मैंने चौपाईका वास्तविक अर्थ अभी ही सुना है।

कथा विसर्जित हो गयी। व्यासजी अपने ठहरनेके स्थानपर पहुँचे। दो-चार सत्संगी और भी थे? जब एक-एक करके सब चले गये, तब मैंने उनसे एकान्तमें पूछा—'आपने यह रहस्य कहाँ पाया?' बड़े भोले थे वे। सरलतापूर्वक अपना पूर्ववृत्त कह चले।

× × ×

'मैं तब कुलमें आठ-दस वर्षका था।' उनका स्वर काँप रहा था। सचमुच मैं उस समय दस वर्षका बालक

था, जब शीतलाने मेरे नेत्र ले लिये। मुझे लगा कि वे वृद्ध महात्मा रो रहे हैं। 'मैं जन्मान्ध था।' अवश्य वे मेरी बात नहीं कह रहे हैं, मैं मनमें सोचने लगा।

'उस दिन श्रीगुरुदेव पधारे थे, हमारे अस्सी वर्षीय कुलगुरु' महात्माने अपना बोलना बन्द नहीं किया। 'हमारे कुलगुरु बहुत अच्छे विद्वान् थे, यह मैंने सुन रखा था, किन्तु वे कहीं उत्तरकाशीमें रहते थे। घर-द्वार छोड़कर संन्यास ले लिया था उन्होंने। मेरे जन्मके पश्चात् पहिली बार वे हमारे घर आये थे।'

मुझ अन्धेको देखकर महात्माजीको अपना पूर्ववृत्त स्मरण हो आया था। 'पिताजीकी गुरुदेवमें प्रबल श्रद्धा थी और वे किसी भी महापुरुषकी चर्चा होते ही बड़े गर्वसे अपने गुरुका वर्णन करते थे। आज उनके उत्साहका पारावार नहीं था। सब लोग गुरुजीके समीप ही बैठे थे।'

मैं प्रणाम करके एक ओर बैठ गया था। मेरे आनेका प्रयोजन भी उन्होंने पूछा नहीं था। पता नहीं किस धुनमें महात्माजी बिना पूछे ही कहते जा रहे थे–" पिताने मुझे लाकर महात्माजीके सम्मुख खड़ा करके कहा—'बेटा, गुरुदेवको प्रणाम करो।' अनुमानसे मैंने पृथ्वीमें मस्तक रख दिया बैठकर। मेरे दोनों हाथोंमें दो रूखे चरण आये। मुझे स्मरण है कि मैंने उन्हें टटोल कर देखा था।"

महात्माजीकी वाणी और अधिक काँपने लगी थी। 'क्या यह तुम्हारा पुत्र है?' गुरुदेवने पूछा। 'जी,

आपके आशीर्वादसे यह एक लड़का पा गया हूँ। किन्तु यह जन्मसे·····।' पिताजी आगे नहीं बोल सके। मुझे लगा, वे रो रहे हैं। 'यह जन्मान्ध है?' गुरुदेवकी वाणी गम्भीर थी। मुझे बड़ा दुःख हुआ। मुझे कोई अन्धा कहता तो मुझे सदा सुख होता था, किन्तु आज पता नहीं क्यों मैं अत्यन्त व्याकुल होकर रो पड़ा। हड़बड़ा कर दोनों हाथोंसे मैंने मुख ढक लिया।' मेरी रुचि बढ़ती जा रही थी। मैं एकाग्र होकर सुन रहा था।

'मुख ढकते समय एक अँगुली दाहिनी आँखमें चली गई। कुछ कष्ट हुआ और एक हल्का प्रकाश झलका! क्या मैं देख सकता हूँ? मैंने नेत्र मल डाले। कुछ खुजली-सी हुई, दोनों नेत्रोंमें अँगुली डालकर खुजला दिया। आँसूकी धारा चल निकली और उस धारामें होकर प्रकाश मेरे नेत्रोंमे पहुँचने लगा। मैं सचमुच देखने लगा था। मेरा नेत्रोंका दोष दूर हो गया था।' महात्माजीकी वाणी बोलते-बोलते रुक गयी। मैं समझ गया कि वे अपने गुरुदेवके ध्यानमें तल्लीन हो गये हैं।

× × ×

'उस टीलेपर, हाँ उस टीलेपर जो बस्तीके पश्चिम है, एक महात्मा रहते हैं। बड़े पहुँचे महात्मा हैं। बड़े भारी विद्वान हैं। पता नहीं, सौ बरसके हैं या डेढ़ सौके। सारे शरीरमें झुर्रियाँ पड़ गयी हैं। रोम-रोम सफेद हो गया है, लेकिन अब भी नित्य रामायण-पाठ उस छोटी

गुटकासे ही करते हैं। उनके नेत्रोंकी ज्योति तनिक भी घटी नहीं है। उन्हींके यहाँ कथा सुनने जा रहा हूँ। बड़ी सुन्दर रामायणकी कथा कहते हैं।' एक परिचितने केवल यह पूछनेपर कि 'कहाँ जा रहा है?' इतना सुना दिया। कुछ वाचाल प्रकृतिके हैं यह महोदय।

'आप भी चलेंगे? चलिये कथा सुन आइये! मैं यहाँ आते समय छोड़ जाऊँगा!' उन्होंने प्रस्ताव भी कर दिया।

'जी नहीं, इस समय तो क्षमा करें!' मैंने पिण्ड छुड़ाया। मैं यहाँ अपने एक सम्बन्धीके यहाँ आया हूँ। महात्माजीके दर्शनकी इच्छा तो थी, लेकिन एकान्तमें महापुरुषोंके दर्शन करनेसे सत्संगका भी लाभ होता है।

घरपर पिताजी नित्य श्रीरामायण-पाठ करते हैं। मुझे छोटेपनसे उनके समीप बैठकर उसे सुननेका अभ्यास है। जबसे अन्धा हुआ हूँ, वे बराबर मुझे चौपाइयाँ रटाते रहे हैं और अब तो कदाचित ही श्रीरामायणकी कोई चौपाई मुझे भूलती हो। मैंने पूरा ग्रन्थ कण्ठ कर लिया है। मासिक कण्ठस्थ पारायणका नियम लिये भी दो या तीन महीने हो चुके है।

मेरी बड़ी इच्छा है कि कोई मुझे रामायण पढ़ा दे। लेकिन साहस नहीं होता कि किसीसे प्रार्थना करूँ। एक तो गरीब ब्राह्मण और उसपर अन्धा, भला कौन मेरे साथ माथा-पच्ची करनेको तैयार होगा। और कोई

हो भी जाय तो क्या वह मेरी सुविधासे होगा ? पिछले महीनेसे पिताजीने भी इस अन्धेको एकाकी कर दिया है। उनके दिव्यधाम जाते ही इस उदर गह्वरको भरनेका भार भी आपड़ा है। इस प्रकार सम्बन्धियोंके यहाँ कितने दिन चलेगा।

'दोपहरीमें महात्माजीको अवकाश मिलता होगा।' कल निश्चय उनके दर्शन करूँगा। पता नहीं उन्होंने नेत्रोंमें कौन-सा अमृत डाल दिया है कि उनकी नेत्र शक्ति अमर हो गयी है। उहँ, मुझ अन्धेको नेत्रोंसे मतलब ? मुझपर यदि कृपा करके रामायण पढ़ाना स्वीकार करलें तो....।

दूसरे दिन लगभग एक बजे मैंने एक लड़केको साथ लिया। मेरी लाठी पकड़कर वह आगे-आगे चलने लगा और मैं महात्माकी कुटीमें पहुँच गया।

× × ×

'ओह मैं तो अपने ही किस्सेमें लग गया।' थोड़ी देर पश्चात् महात्माजी बोले—'क्षमा करना भाई, तुम्हें देखकर मुझे अपनी पुरानी स्मृति हो आयी थी। कहो, तुम कैसे आये ?'

'मेरा सौभाग्य आज जाग पड़ा है।' मैंने दोनों हाथ जोड़कर मस्तक झुकाते हुए कहा। 'मेरे नेत्र भी नहीं हैं और उन्हें भी कोई महापुरुष ही दे सकते हैं। अपने

अँधे लोचनोंके लिए यहाँ आकर अचानक ही सर्व-दोषहारी अमृतका पता मैं पागया हूँ ।' सम्भवतः मैं रोने लगा था ।

उस समयका तो पता नहीं; किन्तु इस समय वे अवश्य रो रहे थे। रोते-रोते ही उन्होंने सुनाया—'लेकिन, मैं इन नेत्रोंको प्राप्त करके करूँगा भी क्या ? कंकड़-पत्थर, मिट्टी-पानी, पेड़-पर्वत, भेड़-बकरी या आदमियोंको देखकर भी मैं क्या करूँगा ? इनको देखनेसे मुझे क्या मिलना है ।'

मैं स्वयं गद्‌गद हो रहा था। कथावाचकजी अपनी कथा सुना रहे थे—'मेरे भीतरी नेत्र भी इन्हीं नेत्रोंके समान अन्धे हैं। उन्हींमें ज्योति दो ! उन्हें निर्मल करदो गुरुदेव !' सहसा पृथ्वीपर मस्तक रखकर वे फूट-फूटकर रोने लगे और धूलि भरे हाथ हृदयपर रगड़ने लगे ।

'मैंने पृथ्वीपर मस्तक रखकर दोनों हाथ फैला दिये ।' कुछ देरमें आश्वस्त होकर उन्होंने सुनाया—'मुझे स्वयं आश्चर्य हुआ और अपार हर्ष भी। दोनों हाथोंमें महात्माजीके चरण थे और मैंने उन्हें भली प्रकार पकड़ लिया था ।'

आगे कुछ न भी कहा जाता तो सम्भवतः मुझे पूछना नहीं पड़ता, फिर भी वे कह रहे थे—'मैंने अपने दोनों हाथ हृदयपर लगा लिये ।' वाणी रुद्ध हो गयी थी और वे फिर भावमग्न हो गये थे ।

'मुझे एक आदेश हुआ, 'तुम इस भवभयहारी श्रीरामचरितका लोगोंमें वितरण करो।' और तभीसे मैं कथावाचक हो गया हूँ।' मैं अब भी इस स्थितिमें नहीं था कि कुछ बोल सकूँ। मेरा मस्तक झुक रहा था और उनके चरणोंपर पड़नेसे पूर्व ही मैंने सुना—

'मेरी विद्या, मेरी बुद्धि, मेरी योग्यता, सब उसी चरण-धूलिमें है। उसीने मेरे अन्तर्नेत्र खोले। मेरे विवेकको निर्मल किया। सचमुच उसी दिन मेरा पुनर्जन्म हुआ।'

विप्र-वन्दन

बन्दउँ प्रथम महीसुर चरना।
मोह जनित संसय सब हरना ॥

मञ्जरियोंके सुरभित भारसे कोमल शाखाएँ बड़ी डालियोंके साथ झुक गयी थीं। ऐसा लगता था कि रसाल पादप किसी अज्ञातके विलुप्त चरण-चिह्नोंपर अपना सौरभ संभार उत्सर्ग करनेको आकुल हो झुक पड़े हैं। भ्रमरोंकी गुञ्जारके मध्य कोकिलकी 'कुहू' और पपीहेकी 'पी कहाँ' हृदयकी रसाल्पुत किये दे रही थी।

मध्यमें एक अश्वत्थ था। अपने मूलमें स्थित संन्यासीकी भाँति वह भी अपने किसलयोंसे आचूड़ गैरिक हो रहा था। एक भी हरित पत्र नहीं था। एक प्रशाखा भी पत्रहीन नहीं थी। कोमल अरुण पत्र पूर्णतः ढके थे।

संन्यासी युवक हैं। उनके वस्त्रोंकी भाँति उनका शरीर भी अरुणाभ है। इस आम्रविपिनमें वे अश्वत्थके नीचे बसन्तमें सम्पूर्ण राग (अरुणिमा) को घनीभूत किये भी विरागकी मूर्ति बने हैं, शृङ्गारकी क्रोड़ीमें अचञ्चल शान्त रसकी भाँति।

"ये विलोल किसलय" संन्यासीके नेत्र ऊपर उठे। मलय पवन अरुण कोमल पत्रोंसे क्रीड़ा कर रहा था।

'मेरा मन भी तो इसी प्रकार चञ्चल हो रहा है।' वे अपने आप ही कह रहे थे।

"वह सुन्दर सलोना हास्यपूर्ण मुख, वे विशाल नेत्र, वह सुकुमार अंगवल्ली।' लोचनोंमें कुछ जल भर आया। बाहरका राग अन्तरमें प्रवेश कर गया था। सम्भवतः अभी नया-नया वेश ग्रहण किया है। किसीकी मधुर स्मृति प्रकृतिका प्रोत्साहन पाकर अन्तरमें उल्लसित हो उठी है।

'यह सब मोह है!' बड़े जोरसे उन्होंने सिर झटक दिया। जैसे मस्तकपर रखे भारको दूर फेंक देना चाहते हों। नेत्रोंपर हाथ फेरा। कमर सीधी की और नेत्र बन्द कर लिये। सम्भवतः ध्यान करनेका प्रयत्न होने लगा।

मन तो एक नटखट बालक जैसा है। जिधर जानेको कहो, उधर झाँकना नहीं चाहता और जिधरसे वर्जित करो, उधर चौकड़ी भरनेमें उसे बहुत उत्साह रहता है। अवश्य ही बहानेबाजी उसे बहुत बढ़िया आती है।

कई बार नेत्रोंको बलपूर्वक बन्द किया। प्राणोंको रोकनेका सतत प्रयास कष्ट देने लगा। भाल स्वेद कणोंसे झलमल करने लगा, किन्तु मन नहीं माना—नहीं माना। विवश संन्यासीने नेत्र खोल दिये। आसन ढीला हो गया।

'यह सब मिथ्या है।' वे फिर अपने आपसे कहने लगे। 'मेरी बुद्धिमें कोई भ्रम नहीं। यह सब नश्वर अथच तादात्म्य भावापन्नके लिये दुखदायी है। द्वैताद्वैत भयं भवति।' कई बार वे श्रुतिके इस महावाक्यको दुहरा गये।

'यह सौरभ समारोह, यह कोकिलकी सप्तम काकली, यह किसलय दल कमनीयता' उनके नेत्र अपने चारों ओर घूम रहे थे। 'क्या यह सम्पूर्ण सौष्ठव व्यर्थ है ? क्या यह समस्त सुख सम्भार दुःखदायी है ?' आप कह सकते हैं कि उनके द्वारा उनका मन बोल रहा था।

'ज्ञानानन्द, तू भ्रान्त हो रहा है !' वे पुनः चौंके 'यह सब मायिक प्रलोभन हैं !' मस्तिष्क उन्हें चेतावनी दे रहा था। अन्तरात्माकी यह पुकार उन्हें एक क्षणके लिए सजग कर गयी।

'मायाका अर्थ है अज्ञान' मनने फिर सिखलाना प्रारम्भ किया 'श्री गुरुदेवके मुखसे समस्त तत्वज्ञानका श्रवण एवं निरन्तर उसके मननके पश्चात् भी क्या अज्ञान रह सकता है ? यह सौन्दर्य माधुर्य एवं आनन्दोल्लास क्या उसी चिर सच्चिदानन्दका उद्भिन्न स्वरूप नहीं ? क्या आवश्यकता है इससे मुख मोड़नेकी ? हठ क्यों ? आग्रह भी परिच्छिन्नताका सूचक है ?'

संन्यासी इस मन-मस्तिष्कके द्वन्द्वसे चञ्चल हो उठे। वे उठ खड़े हुए। अधोवस्त्रमें लगी पृष्ठ भागकी धूल एवं तृणोंको हाथसे झाड़कर बड़ी तीव्रतासे वहाँसे चल पड़े। सम्भवतः वे श्रीगुरुचरणोंमें उपस्थित होनेको व्यग्र होउठेथे।

× × ×

'मलकी निवृत्ति तपस्या—यम-नियमादि पालन, श्रवण-मननसे होती है। विक्षेप दूर होता है उपासना, निदिध्यासन या ध्यानसे और आवरण समाधि भगवत्कृपासे अथवा स्वतः तिरोहित होता है।'

चन्द्रमाकी चन्द्रिकाने उस सुविस्तृत अमर भूमिपर रजतावरण आस्तीर्ण कर दिया था। आसपास न कोई ग्राम था और न वृक्ष। धानके खेतोंकी ऊँची-नीची मेड़ें चारों ओर बिखरी थीं। खेतोंमें कटे धानकी जड़ें स्पष्ट दीख रही थीं। धवल चाँदनीमें एक चौड़ी मेंड़परसे जो निरन्तर पथिकोंके आने-जानेसे मध्यमें उजली हो गयी थी, युवक संन्यासी चले जा रहे थे।

'कोई भी तो नहीं है!' एक बार खड़े होकर उन्होंने पीछे मुड़कर देखा। दोनों पार्श्वोंमें दूर तक दृष्टि डाल ली। 'मैंने अभी-अभी किसकी शास्त्र-चर्चा सुनी है? वह कौन था? किससे बातें कर रहा था?' कहीं कोई आड़ नहीं थी। कई फर्लांग दूरका व्यक्ति भी दिखायी पड़ जाता। स्वर समीपसे ही आया था।

'हरिः ॐ' उच्च स्वरसे साधुने कहा। शरीरमें रोमांच हो आया था। अकारण ही मनमें एक आतङ्क उत्थित हो रहा था। उसीको दूर करनेके लिए उन्होंने ध्वनि लगायी थी। उसे वे दुहराते ही जारहे थे। चरणोंकी गतिके साथ प्राणोंने भी गति बढ़ा दी थी और हृदयने भी। पता नहीं क्यों, उष्णता प्रतीत होने लगी थी

और भालपर कुछ स्वेदकण भी इस रात्रिके शीतल समयमें प्रकट होने लगे थे।

'अभयं सत्व संशुद्धिः' स्मरण आया। 'छिः, मैंने अभी तक साधनावस्थाके प्रथम सोपानपर भी पद नहीं रखा है! यह शरीरका मोह है।" संन्यासी वहीं खड़े हो गये।

'तब क्या आप कहना चाहते हैं कि विश्वामित्रकी तपस्याने उनका मल नहीं नष्ट किया था और इसीसे वे वशिष्ठ-पुत्रोंकी हिंसामें लगे थे एवं महातपस्वी दुर्वासाकी भी यही दशा थी।'

संन्यासी चारों ओर आखें फाड़-फाड़कर देख रहे थे। शरीरमें रोमाञ्च बार-बार हो रहा था। समझमें नहीं आता था कि यह शब्द कहाँसे आ रहा है।

'अरे नहीं' मृदु हास्यकी ध्वनि हुई। यह क्रोधादि विकार तो विक्षेपके फल थे और इसीसे वे स्थायी न रह सके। फिर भी इतना स्मरण रखना चाहिये कि आवरण निवृत्तसे पूर्व साधन शिथिल होते ही निवृत्ति हुए भी मल-विक्षेप पुनः जागृत हो जाते हैं; क्योंकि इनका मूल तब तक नष्ट नहीं हुआ रहता।"

सहसा धक्से एक लपट बगलके खेतकी दूसरी मेंड़के पीछेसे उठी। संन्यासीका हृदय भी एक बार धक् से हो गया। नेत्र उधर ही स्थिर हो गये। सहसा उज्ज्वल चन्द्रिकामें धूम्रकी उठती हल्की रेखा उन्होंने देख ली। कुछ आश्वासन मिला। उधर ही खेतमें होकर मुड़ पड़े।

ऊँचे-नीचे खेतोंमें एक स्थानपर लकड़ीके दो कुन्दे मन्द-मन्द जल रहे थे। अग्निके दोनों ओर एक-एक साधारण-सा मैला उत्तरीय बिछाये दो अलमस्त लेटे थे। उनकी कटिमें कौपीनें थीं, पर गैरिक नहीं। और कोई वस्त्र था नहीं। न भभूतिये और न जटाधारी। दोनोंके समीप एक-एक मिट्टीकी हण्डी रक्खी थी। पता नहीं कैसे साधु थे वे।

'ॐ नमो नारायणाय' संन्यासीने देखते ही कहा। उनमें जो कुछ वृद्ध थे वे बोले 'नारायण! आओ सन्त।' कोई उठकर बैठा नहीं। संन्यासीने भी इधर ध्यान नहीं दिया। वे अग्निके समीप एक ओर बैठ गये।

× × ×

'इस अग्निको तो आप देख ही रहे हैं।' वृद्ध साधुने कहा 'प्रज्वलित होनेसे पूर्व यह काष्ठ रूपमें ही तो थी? यह भी आप समझते ही हैं कि यदि अभी इसपर वृष्टि हो जाय तो यह अवशेष काष्ठ ही रहेगी। क्या आप ऐसा भी कोई उपाय बता सकते हैं जो वृष्टिसे बचा सके?'

'बहुत सीधी बात है', संन्यासीने कहा 'इसपर छाया कर दी जावे।'

वर्षा तो होगी ही। बड़े बड़ोंकी अग्नि उसमें बुझ जाती है और वे पुनः उसके लिए दौड़ते हैं। वृद्ध जैसे अपने आपसे कुछ कह रहे थे। 'इस प्रकृति गगनमें वर्षा

भला कैसे रुकेगी। अग्नि तो रक्षाके लिए छाया चाहती है।'

'मैं कुछ भी नहीं समझ सका भगवन्।' संन्यासीनें बड़े विनम्र भावसे प्रार्थना की।

'अग्नि स्वतः अपनी छाया नहीं बनती।' वृद्धने प्रार्थनापर ध्यान दिया ही नहीं। वे वैसे ही कहते गये। 'छाया तो उसे दूसरेसे ही प्राप्त होती है। भला पत्तोंके अतिरिक्त छाया करेगा कौन ? पत्ते जिसके पास हों, वहीं छाया भी देगा।

'किन्तु भगवन्............।' संन्यासी कुछ कहने जा रहे थे। उनकी भावभंगी कह रही थी कि अभी वे कुछ समझ नहीं सके हैं और अपनी प्रार्थना दुहराने जा रहे हैं।

'नहीं, नारायण' वृद्धने उन्हें बीचमें ही रोका 'हम तो अपढ़ हैं। आप श्रीवत्स लांछित क्षीरशायीका ध्यान करें, वही आपको छाया देंगे। हाँ सन्त' उन्होंने अपने सहचरसे पूछा—'हमारे अभ्यागतके आनेका समय हो गया है ?'

'प्रभुका अनुमान व्यर्थ नहीं होता।' उस युवक साधुने इस प्रकार नम्रतासे उत्तर दिया जो बताता था कि वह वृद्धका शिष्य है। 'पण्डितजी आने ही वाले हैं।'

संन्यासीने इतना ही समझा कि ये दोनों महापुरुष किसीकी प्रतीक्षाकर रहे हैं; पर क्यों ? यह भी क्या कोई प्रतीक्षा करनेका स्थान है ? इन धानके खेतोंमें इस अर्धरात्रिमें कौन तीसरा व्यक्ति यहाँ आवेगा। उससे

मिलनेको यही स्थान क्यों निश्चित किया गया ?' अनेक प्रकारकी शंकायें उठ रही थीं। इनका कोई भी समाधान न था।

'लीजिये, पण्डितजी आ गये।' युवक साधुने कहा और थोड़ी दूरपर एक उज्ज्वल-वस्त्र पहिने कोई आता दृष्टि पड़ा। चुनकर पहिनी धोती, कुर्ता, कन्धोंपर उत्तरीय एवं मस्तकपर पगड़ी, सभी दुग्धोज्ज्वल वस्त्र थे।

निकट आनेपर एक गौर वर्ण तेजस्वी वृद्धब्राह्मणके दर्शन हुए, जिनके मस्तक एवं सुदीर्घ श्मश्रुके केश भी वस्त्रोंके वर्णके ही थे। विशाल भाल त्रिपुण्डकी भस्मसे भूषित हो रहा था।

'नारायण' सहसा वृद्ध साधु बैठ गये। युवक साधुने उठकर अग्निके एक ओर अपना चद्दर बिछा दिया। संन्यासी बड़े आश्चर्यमें थे। 'इन पण्डितके प्रति महापुरुषोंका इतना सम्मान प्रदर्शन क्यों ?

'आप इस सेवकको लज्जित न करें !' ब्राह्मणने दोनों हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया।

'जिनके चरणोंकी छायामें रहनेकी कामनासे श्री-क्षीरशायी भी अपने हृदयपर सदा भृगुलता धारण करते हैं, क्या हम उनका योग्य सत्कार कर सकेंगे।' वृद्ध साधुने मस्तक झुकाथा और युवकने भी।

'हैं ! सन्यासी चौंक पड़े।' वे दोनों साधु, उनका चद्दर और हंडियाँ क्या हुईं। यहाँ तो वही पंडित एकाकी उनके सम्मुख खड़े हैं।'

[४]

'सिद्धोंकी गतिके सम्बन्धमें आपको इतना आश्चर्य क्यों ?' वृद्ध पण्डित शान्त खड़े थे। ऐसा जान पड़ता था कि वे उनसे भली प्रकार परिचित हैं। 'आपपर कृपा करके उन्होंने दर्शन दिये हैं। अब आप निकटके ही ग्राममें पधारकर इस कङ्गाल ब्राह्मणके गृहको पवित्र करें।

'आप उनसे परिचित जान पड़ते हैं।' संन्यासीने उत्सुकता पूर्वक पूछा 'वे कौन थे ? यदि मैं जाननेका अधिकारी होऊँ.........।'

'वे भगवान दत्तात्रयके अन्तरङ्ग हैं।' बीचमें ही वृद्धने कहा। 'इस जनपर उनकी कृपा रहती है। आज अन्तरमें उन्हींकी प्रेरणा हुई और मैं रात्रिमें इधर चल पड़ा। अब आप पधारें तो कृपा होगी।'

ब्राह्मण खड़े थे। संन्यासी उनके आग्रहको टाल न सके। वे उनके साथ चल पड़े। 'विक्षेपकी निवृत्ति उपासना-ध्यानसे होती है।' वृद्ध ब्राह्मण जैसे स्वतः बड़बड़ानेके अभ्यस्त हों। 'प्रज्वलित अग्नि भी वृष्टिसे बुझ जाती है। उसे छाया अभीष्ट है।'

संन्यासी चौंके, ये ब्राह्मण देवता क्यों उन महात्माओंके वचनोंकी आवृत्ति कर रहे हैं। 'भगवन् मैं इन गूढ़ वचनोंको समझ नहीं पारहा हूँ।' उन्होंने बिना संकोचके कह दिया।

'महाप्रभुओंने ठीक ही समझाया है। आप अपने मूल

देखे, अनपेक्ष भावसे कहा—'संशय दो प्रकारका होता है। एक अज्ञान-जन्य एवं दूसरा मोह-जन्य—आसक्ति जन्य। प्रथम मल-जन्य है और द्वितीय विक्षेप-जन्य।'

सन्यासीका सम्पूर्ण प्राण कानोंमें आगया था। वे न मार्ग देख रहे थे और न शरीर। पैर स्वतः बढ़े जारहे थे। एकाध बार ठोकर भी लगी। इतनेपर भी वे श्रवणमें दत्तचित्त थे।

'श्रवण-मनन-निदिध्यासनसे अज्ञान दूर हो जाता है। बुद्धि उस परमतत्वकी सत्यताको समझ लेती है।' ब्राह्मण कहते जा रहे थे—'हृदय स्वीकार करले तब ठीक। आसक्ति पूर्ण हृदय आसक्तिका वेग प्रबल होनेपर बुद्धिको अपनी ही ओर आकर्षित कर लेता है। वह पुनः भ्रान्त होजाती है।'

'ज्ञान हो जानेके पश्चात भी अज्ञानकी प्राप्ति होती है?' संन्यासीके स्वरमें आश्चर्य था।

'अपरोक्ष ज्ञानके पश्चात तो अज्ञानकी प्राप्ति असम्भव है।' ब्राह्मणने उसी धीर स्वरमें कहा—'किन्तु परोक्ष ज्ञान केवल अज्ञानके एक रूपको निवृत्त करता है। मोहके दो स्वरूप हैं, अज्ञान-जन्य एवं आसक्ति-जन्य। पदार्थोंमें अज्ञानवश जो सुख समझा जारहा है, वह आसक्ति ज्ञानसे नष्ट हो जाती है। इतनेपर भी आसक्ति-जन्य मोह नहीं जाता।'

संन्यासीने ब्राह्मणकी ओर इस प्रकार देखा, जैसे वे ठीक नहीं समझ पारहे हैं।

'जैसे शराबी शराबको लाभदायक समझकर पीना प्रारम्भ करता है' ब्राह्मणने स्पष्ट किया—'समझानेपर वह उसे हानिकर समझ लेता है, किन्तु व्यसन होनेसे छोड़ नहीं पाता; इसी प्रकार भोगोंमें सुखरूपताका बोध तो ज्ञान दूर कर देता है, परन्तु जन्म-जन्मान्तरके सेवनसे उनमें व्यसन होगया है। यह मोह दूर होता है उपासनासे, महापुरुषोंकी कृपासे।'

'और आपके श्रीचरणोंके प्रतापसे।' सहसा संन्यासी-को उन दोनों महापुरुषोंके गूढ़ वचनोंका ज्ञान हुआ। वे बड़ी शीघ्रतासे घुटनोंके बल बैठ गये। ब्राह्मण झिझके, इससे प्रथम ही उनका मस्तक उन विप्रदेवके चरणोंपर पहुँच गया। एक क्षण पश्चात ही वे उठे और बिना कुछ कहे शीघ्रतासे एक ओर चले गये। पता नहीं क्या समझकर ब्राह्मण देवताने भी उन्हें रोका नहीं।

× × ×

श्री गोमतीजीके किनारे एक ग्रामके समीप फूसकी एक झोंपड़ी थी। उसमें एक कौपीनधारी महात्मा बहुत दिनोंतक रहे। वे अपने यहाँ आनेवालोंमें-से प्रत्येकसे पहुँचते ही जाति पूछते थे। ब्राह्मणोंके पैरोंपर मस्तक रखे बिना वे मानते नहीं थे। एकाध विप्रको भाग खड़े हुये, किन्तु वे महापुरुष पीछे दौड़ और पद वन्दन करके ही छोड़ा। मुझे क्षमा करें! ब्राह्मण उनसे झूठ बोल कर दूसरी जाति बता दिया करते थे।

—★—

सज्जन-वन्दन

सुजन समाज सकल-गुन खानी।
करउँ प्रनाम सप्रेम सुबानी॥

'ये यहाँ क्यों घूम रहे हैं?' अपनी सीधी बघेलखण्डीमें बाबा शंकरदासजीने अपना विचित्र अनुभव सुनाया! 'मैं उस दिन गिरिनारकी पहाड़ीपर मार्ग छोड़ कर जंगलमें घूम रहा था। एक दीर्घकाय लम्बी दाढ़ी वाले साधुको अपने आगेसे जाते देखकर मुझे आश्चर्य हुआ और मैंने उनका पीछा कर लिया।'

अब भी कुटियामें धुआँ भरा था और हम लोग बार-बार नेत्र पोंछ रहे थे। भगवान ही जाने कि रात-दिन इतने मोटे लक्कड़ सुलगाकर इस जरा-सी पक्की कुटियाकी खिड़की और द्वार बन्द करके धुएँमें घुटते रहनेमें बाबाजीको क्या मिलता है। कुटियामें वायुके आनेका कोई मार्ग तो रह नहीं जाता, फिर वे जाने जीवित कैसे रहते हैं। कुटियाके द्वार खुलवाकर लगभग आधे घण्टे तक हम बाहर धुआँ निकल जानेकी प्रतीक्षा करते रहे और इतनी देर बीतनेपर भी आये तो नाक-आँखसे पानी जा रहा है। आँखें धुएँसे चिरमिरा रही हैं।

'एक गुफामें उनके पीछे दूर तक चला गया और जब घोर अन्धकारमें वे विलीन हो गये, तब भी चलता ही रहा।' एक मिट्टीकी मूर्तिके समान बाबाजी निश्चल बैठे सुना रहे थे। वे बोलते न होते तो उनके विभूति लगे शरीरको आप अवश्य मूर्ति समझ लेते। 'बहुत देर पश्चात् मन्द-मन्द प्रकाश दिखलायी पड़ा और अन्तमें मैं एक विस्तीर्ण प्रकाशित प्रदेशमें पहुँच गया। वहाँ भूमिके नीचे किसका प्रकाश था, कह नहीं सकता। लगता था कि सूर्यका ही प्रकाश हो। न कोई प्रकाशक दृष्टि आता था, न प्रकाशमें धुँधलापन था।'

आज बाबाजी प्रसन्न थे। उमङ्गमें थे और अपने जीवनका विचित्र अनुभव बिना आग्रहके सुना रहे थे। वैसे वे बच्चोंकी भाँति सरल हैं। फिर भी अपने सम्बन्धमें कोई चर्चा करते उन्हें सङ्कोच होता है। महात्माओंके समीप छिपाने जैसी कोई बात कभी हुआ नहीं करती।

'महात्माओंके आसन लगे थे। स्थान-स्थानपर बड़े-बड़े शरीर, नाभिसे नीचे तककी दाढ़ियाँ, सब अपने-अपने बाघम्बरपर नेत्र बन्द किये बैठे थे। सबके सामने धूनी जल रही थी।' बाबाजीका कहनेका ढंग बता रहा था कि उनको अब भी वह दृश्य प्रत्यक्ष-सा प्रतीत हो रहा है। 'एक बहुत बड़े चूल्हेपर कड़ाहेमें दूध खौल रहा था। अचानक शङ्ख बजा और सब महात्मा पंगतमें आ बैठे। मैं दण्डवत करके एक ओर खड़ा हो गया। उनमें जो महन्तजी जान पड़ते थे, उनके आदेशसे मुझे

भी बैठना पड़ा। खीर परोसी गयी और उसका स्वाद तो फिर पूछो ही मत !'

मैं आपसे बता दूँ कि बाबाजीने बड़े विस्तारसे इन घटनाओंको सुनाया था। मुझे उनकी भाषा कहाँ मिले ? वैसा भाव कैसे हृदयमें आवे ? विस्तार करके आपका समय भी व्यर्थ नष्ट नहीं करूँगा ; क्योंकि मेरे भावहीन विस्तारमें आपको मिलना भी क्या है।

'मैंने बहुत आग्रह किया कि मुझे भी वहीं रहनेके लिए एक कोना मिल जाय।' बाबाजीके स्वरमें निराशा थी। 'लेकिन मुझे तो अभी थोड़ी बहुत निद्रा आती है। अखण्ड भजन चलता नहीं। उन दिव्य महापुरुषोंके बीचमें कैसे रह पाता।' हम जानते हैं कि बाबाजी दिन रात्रिमें केवल दो घण्टेके लगभग सोते हैं और वह भी प्रायः आसनपर बैठे-बैठे ही। लेटते तो उन्हें देखा नहीं गया।

'जिस महात्माके पीछे चलकर मैं वहाँ तक पहुँचा था, उन्हींको महन्तजीका आदेश हुआ। वे ही मुझे एक मार्गसे बाहर ले आये।' बाबाजीने अपनी आकुलताको निवृत कर लिया था। 'बाहर एक लता कुञ्जसे निकलते ही वे महात्मा तीव्र गतिसे आगे बढ़ गये। मैं दौड़कर भी उन्हें न पासका और फिर पीछे लौटनेपर वह मार्ग भी न मिला, जिससे मैं बाहर आया था। बहुत ढूँढ़ा—पर व्यर्थ।' अब बाबाजीके सायंकृत्यका समय हो गया था। दो घण्टेसे अधिक उनकी कुटिया मिलने वालोंके

लिए खुली नहीं रहती। वे उठे पानीके समीप जानेके लिए। हम सबने भी प्रणाम कर लिया और लौट आये।

× × ×

'आज बाबाजीकी कुटियामें सस्वर सामगान कौन कर रहा है? कुटिया खुल गयी थी। कोई मिलने वाला न हो, तो भी बाबा शंशरदासजी कुटिया खोल लेते हैं और श्रीरामचरितमानस गुन-गुनाया करते हैं। वैसे वे पढ़े-लिखे हैं नहीं। एक सदी पुराना भोलापन है उनमें। आज जब मैं दर्शनके लिए गया तो पास पहुँचते ही वेद-पाठ जैसी ध्वनि आयी। द्वारके समीप ठिठक गया।

'अतुलितबलधामं ···' मैंने कान लगाकर ध्यानसे सुना। कोई श्लोकोंको श्रुतिके स्वरमें पढ़ सकता है, ऐसा मेरा अनुमान भी नहीं था। उत्सुकतावश आगे बढ़ गया। 'जाओ, बोरा ले लो और बैठ जाओ।' बाबाजीने रामायण बन्द करदी और आसनको द्वारसे एक ओर खिसका लिया।

'मैंने तो समझा कि आपके यहाँ कोई वेदपाठ कर रहा है।' मैं कुछ धृष्ट हो गया हूँ।

'मैं यों ही अटक-अटककर पढ़ता हूँ।' बड़ी सरलतासे उत्तर मिला मुझे।

'महाराज, मैं बड़ा बेचैन हूँ।' मेरे साथ एक सज्जन और आये थे। उन्होंने लेटकर दण्डवत किया और बहुत नम्रतापूर्वक प्रार्थना की—'पेटमें बराबर दर्द रहता है।

कभी-कभी तो मरणान्त कष्ट होता है।' उनकी वाणीमें जितनी नम्रता थी ; उतना आग्रह मुझे नहीं जान पड़ा।

'किसी अच्छे डाक्टरको दिखलाओ। रोगको बढ़ने देना ठीक नहीं।' बाबाजीने बड़े स्नेहसे समझाया उनको। 'न हो तो प्रयाग चले जाओ। सुना है, लखनऊमें बड़े भारी डाक्टर रहते हैं।' जितने वैद्य डाक्टरोंका नाम बाबाजीने सुना था, सब गिना जाना चाहते थे।

'महाराज कुछ कृपा करें तो····।' उन्होंने प्रार्थना की।

'भैया, मैं मूर्ख जंगली भला क्या जानूँ। किसी वैद्यसे इतनी पहिचान भी नहीं कि कहला दूँ।' स्वरमें परिपूर्ण दया थी। 'तुम इनको किसी अपने परिचित वैद्यके पास भेज दो।' मुझे आज्ञा हुई। मस्तक झुकाकर स्वीकृति सूचित करदी मैंने।

बाबाजी पर्याप्त जड़ी-बूटियोंका ज्ञान रखते हैं। उनके आशीर्वादमें समस्त भौतिक एवं दैविक कष्टोंके निवारणकी शक्ति है। वे इस प्रकार बोल रहे थे, जो स्वर सूचित करता था कि रोगीका कष्ट सुनकर उनका नवनीत कोमल हृदय भली प्रकार प्रभावित हुआ है। इतनेपर भी उनका जड़ी-बूटी न देकर दूसरोंका नाम गिनाना समझमें आता नहीं था।

'आपने कृपा नहीं की ?' उन सज्जननें खिन्न होकर प्रणाम किया और मुझे कार्यालयमें बैठनेको कह कर चले आये। उनके चले आनेपर मैंने पूछा।

'भैया पढ़े-लिखे लोगोंकी श्रद्धा घास-फूसपर नहीं होती।'

बाबाजीने मुझे समझाया। 'बिना विश्वासके कोई दवा लाभ नहीं करती।'

'आप कह देते, तो भी लाभ हो जाता।'

'तुम समझते हो कि उसके प्रणाममें साधुओंके प्रति बड़ा प्रेम है ?'

'प्रेम न सही दुःखी तो है ही।' मैं आग्रह कर रहा था।

'सचमुच बड़ा दुःखी है !' बाबाजी फिर करुण हो उठे। 'लेकिन मेरा वश भी क्या ? बिना श्रद्धाके आशीर्वाद भी सफल नहीं होता। प्रारब्ध तो भोगना ही होगा।'

मुझे लगा कि बाबाजी कह रहे हैं कि बिना श्रद्धा-विश्वासके, बिना प्रेमके, अनधिकारीको आशीर्वाद नहीं दिया जाता ; क्योंकि मैं यह जानता हूँ कि महात्माओंका अमोघ आशीर्वाद श्रद्धादिकी अपेक्षा नहीं करता अपनी सफलताके लिए।

महात्माओंमें दया, कोमलता, अधिकार निरूपण सब साथ ही रहते हैं। मैं मन ही मन सोच रहा था, श्लोकके मन्त्रोच्चारणकी पद्धति भी स्मरण थी। यह जड़ी-बूटी देना तो बहाना है। मन विकल्प कर रहा था। ऐसा कौन-सा गुण है जो इन आत्माराम बीतकाम

महापुरुषोंमें न हों। वे न्याय भी करते हैं और दया भी।' प्रणाम कर लिया मैंने बाबाजीको, वे सज्जन मेरी प्रतीक्षा भी तो करते होंगे।

× × ×

'बाबा, मुझे दवा दे दे।' वह उजड्ड जङ्गली आया और उसने दण्डवत करली। दवा माँगनेका ढंग उसका ऐसा अशिष्ट था कि मुझे बहुत बुरा लगा।

'ले, दो-तीन काली मिर्च डालकर पीस लेना और पिला देना!' बाबाजीने उसके रोगीकी स्थिति पूछी और एक कोई जड़ उसकी ओर फेंक दी।

'एक ही बार पिलाऊँ?'

'अरे नहीं, तीन टुकड़े कर लेना और सुबह शाम देना।' बाबाजीने मिर्च, मसाला आदि छोड़नेको कहकर परहेज बता दिया। 'अच्छा जा अब।'

'तनिक दम तो ले लेने दो।' वह दस मील चलकर दोपहरीमें आया था। पसीने-पसीने हो रहा था।

'तालाबपर जाकर दम ले!' बाबाजी इतनी कठोरतासे फटकार सकते हैं, यह मैंने आज ही देखा। 'वहीं जाकर पानी पीलेना।'

बेचारा क्या करता, उठा और फिर दण्डवत करके चलता हुआ। उसके मुखपर बाबाके व्यवहारसे न तो कोई असन्तोषकी झलक आयी और न उसकी श्रद्धापर कोई प्रभाव पड़ता जान पड़ा।

'तद्विद्धि प्रणिपातेन परि प्रश्नेन सेवया।' मुझे श्रुतिका एकांश स्मरण आ रहा था। प्रणाम, प्रश्न और सेवा—ये साथ रहें, तभी महापुरुषोंसे सम्पूर्ण लाभ उठाया जा सकता है।

'कामना लेकर महापुरुषोंके समीप जाना ही ठीक नहीं।' सायंकाल हमारी मित्र मण्डलीमें चर्चा चल रही थी। 'वैसे वे उदार हृदय सदा ही द्रवित रहते हैं। उन गुण-राशियोंके किसी भी गुणको श्रद्धा आकर्षित कर लेती है, ग्रहण कर लेती है। दिखावटी नम्रता नहीं चलती वहाँ। उसकी दाल गलनेसे रही। उनकी अन्तर्भेदिनी दृष्टियोंको धोखा नहीं दिया जा सकता।'

'पानेके लिए भी कुछ योग्यता चाहिये।' दूसरे मित्र कह रहे थे। 'यदि व्यवहार न आता हो तो श्रद्धा केवल कामना-पूर्ति तक रह जाती है। उससे उन्मुक्त हृदयसे सब कुछ उड़ेल देनेकी प्रेरणा नहीं प्राप्त होती। यों सन्त श्रद्धालुको निराश नहीं करते। उसका उद्देश्य तो पूर्ण कर ही देते हैं।'

मैं सोच रहा हूँ—सम्भवतः ऐसा ही कोई कारण बन जाता होगा, जब बाबाजी अपने जीवनके गुप्ततम अनुभव बिना सङ्कोचके सुनाने लगते हैं। पूछनेकी अपेक्षा भी नहीं किया करते वे। कौन कह सकता है कि इन महापुरुषोंका हृदय कब किसपर सानुकूल नहीं रहता।

साधु-चरित

साधु चरित सुभ चरित कपासू ।
निरस बिसद गुनमय फल जासू ।।
जो सहि दुःख परछिद्र दुरावा ।
बन्दनीय जेंहि जग जस पावा ।।

पण्डित—यही नाम पड़ गया है उनका लोगोंमें। रूईकी गाड़ियोंकी दलाली करते हैं। रुई बाजारके समीप ही उनकी छोटी-सी झोंपड़ी है। अकेले ही हैं। अपने हाथसे टिक्कर सेंक लेते हैं और बरतन मलनेको भी कोई मजदूर नहीं रखा है। एक तखत, दो-चार वर्तन, कुछ मिट्टीकी हण्डियाँ और थोड़े-से कपड़े, कोठरी ही कितनी बड़ी है कि उसमें ढेरों सामान आ जावे।

एक आलमारीमें छोटी-बड़ी शीशियाँ भरी हैं। किसीमें त्रिफला है और किसीमें त्रिकुटा। समीप मजदूर बस्तीमें कोई वीमार हो तो दवा पण्डितजी ही देते हैं! दवाके दामकी बात न कीजिये; कभी-कभी अनुपानके लिए शहद भी पण्डितजीको देना पड़ता है और अदरखके लिए पैसा भी।

सामने पीपलके नीचे चबूतरेपर खा-पीकर रात्रिके आठ-नौ बजे मजदूरोंकी मण्डली एकत्र होती है।

पण्डितजी मध्यमें बैठते हैं श्रीरामचरितमानस लेकर। उनके व्यासासनको सम्भवतः कभी कोई रामायणी छीनने नहीं आवेगा। क्या मिलेगा उसे इन श्रोताओंसे ? ये अनपढ़ मजदूर ठिकानेसे प्रशंसा करना भी तो नहीं जानते। उनके मूक दृगोंकी श्रद्धासे किसीकी जेब भरनेसे रही।

रूईकी गाड़ियाँ बाजारमें सायंकालसे ही आने लगती हैं। दूरके किसान दो-तीन दिनमें पहुँचते हैं और उनके आनेका कोई समय नहीं होता। प्रायः आठ बजेसे भी पहिले दलालोंके चक्कर होने लगते हें। सुनहले बटनोंसे चमकती सफेद कोटोंमें सजे मिलके एजेण्ट आ धमकते हैं। कोई डाँटता है, कोई फुसलाता है, कोई बहकाता है। सभी चेष्टा करते हैं कि किस प्रकार उस गाड़ीपर बैठे किसानके मालका, जिसे उसने अपने रक्तको पसीना करके प्रस्तुत किया है, कम-से-कम मूल्य दिया जाय। किस प्रकार उससे कुछ अधिक दलाली ऐंठी जाय।

किसान शीघ्रतामें होता है। उसके पासका भूसा समाप्त हो रहा है। उसके हृदयके टुकड़े ये बैल जो गाड़ी ही नहीं, उसकी जीवन गाड़ीको भी खींच रहे हैं, भूखे न रह जावें। घरमें एक समयका ही आटा छोड़ आया है। उसके लौटनेकी आशामें चूल्हा ठण्डा पड़ा होगा। कोई दीप जलाये रात्रिके पिछले प्रहर तक उसकी प्रतीक्षा करता होगा द्वार खोले। मुन्ना बार-बार गाँवसे बाहर तक आकर बापूकी गाड़ी देखना चाहता होगा।

बापू मिठाई लेकर आवेंगे शहरसे। किसानके हृदयमें जाने क्या-क्या होता है। वह ढेरों सामग्री घर ले जानेका स्वप्न देखता है। सब आशाका आधार है रूई। वह गिड़गिड़ाता है, पैर छूता है, दलालोंके निहोरे करता है। उसे छल-कपट कहाँ आता है। दो पैसे अधिक चाहिये और माल शीघ्र बिक जाय तो ही ठीक।

पण्डितजी आते हैं बाजारमें पूजा-पाठसे निवृत्त होकर पूरे दस बजे। उन्हें चिन्ता नहीं कि उनको सहयोगियोंसे कम गाड़ियाँ मिलेंगी। सीधे मिल एजेण्टसे पूछते हैं— कितनी गाड़ियाँ चाहिये? किस भाव तक? कैसा माल?' इधर-उधरकी हाँकना आता नहीं। व्यर्थ प्रशंसा की नहीं जाती। एजेण्ट भी जानते हैं। कुछ-न-कुछ आर्डर मिल ही जाते हैं। वैसे तो आज 'जी हजूरीका युग है।

किसान आँखें बिछाये रहते हैं। पण्डितजीकी प्रतीक्षामें कुछ देर रुकते भी हैं। वैसे उनकी अकुलाहट बहुत रुकने नहीं देती। जो उन्हें जानते हैं, मोल भाव करते ही नहीं। पता होता है कि पण्डित ठीक दाम ही दिलावेंगे। जिन्होंने ऊपर कुछ और नीचे कुछ भरा है, पानीसे वजन बढ़ाया है, वे सीधे कह देते हैं—'पण्डितजी, आपके योग्य माल नहीं है।' कोई सहयोगी व्यर्थ झगड़ा खड़ा करे— 'वह गाड़ी मैंने तय की है।' पण्डितजी झगड़ेंगे नहीं। 'अच्छा, मैं भूलसे आ गया।' फिर भी उन्हें कुछ गाड़ियाँ मिल ही जाती हैं और दो बजे वे अपनी झोपड़ीमें पहुँच जाते हैं।

किसान चाहे उन्हें गाड़ी देवें या दूसरे दलालको, रुपये लेकर उन्हींकी झोंपड़ीपर पहुँचते हैं। पण्डितजी बड़े प्रेमसे सुनते हैं कि उन्हें घर क्या-क्या ले जाना है। सलाह देते हैं कि क्या लेजाना चाहिये और कितना बचा लेना चाहिये। कौन-सी वस्तु कहाँ अच्छी और सस्ती मिलेगी, यह भी वही बतलाते हैं और प्रायः बाजार साथ ही चले जाते हैं। यों उन्हें किसानोंके लाये बैंगन, लौकीके उपहार भी मिल ही जाते हैं। अब यह हिसाब कौन लगाये कि उन उपहारोंका मूल्य अधिक है या गाड़ीवानोंको पानी पिलाने, लकड़ी देनेका जिससे वे भोजन बनाते हैं।

× × ×

'पण्डित!' दलालोंकी मण्डली बाहर खड़ी थी। पण्डितजी बाहर निकल आये। 'चलो रुपया निकालो एक!' होलीके लिए रङ्ग और बूटी छाननेका चन्दा था यह।

'मुझे तो आप लोग क्षमा करें!' पण्डितके शब्दोंमें नम्रता थी।

तुमने दीवालीको एक दीपक ही जलाया अपनी कुटियामें तो हम लोगोंसे कोई मतलब नहीं था, पर यह तो होली है।' रोबसे कहा एकने।

'मेरे पास इस समय कुलमें दो रुपये हैं।' पण्डितजीका स्वर शान्त था। 'रंगकी अपेक्षा किसीकी औषधिमें वे लगें तो ठीक और भङ्ग पीनेके तो मैं विरुद्ध हूँ।'

पर्याप्त तकझक हुई। मण्डलीने देख लिया कि यहाँसे कुछ मिलने वाला नहीं है। किसीने व्यंग किया, किसीने डाँट बतायी, किसीने धमकाया। पण्डित अपने निश्चयसे टलने वाले थे नहीं। अन्ततः रुष्ट होकर लोग लौटने लगे।

'यह तो रुईकी दलाली करते-करते रुईकी भाँति ही नीरस हो गया है।' किसीने कहा—

'खूसट है पूरा।' झल्लाया स्वर था दूसरा।

'तभी तो सूतकी भाँति लम्बा मरियल हो रहा है।' एकने दुर्बलतापर व्यङ्ग किया पण्डितकी।

'प्रभु करे, सूतकी ही भाँति मैं आच्छादन भी बन सकूँ।' पण्डितने सुन लिया था और कुटियामें जाते हुए अपने आप कह रहे थे।

'आज ही तो होली जलनी है।' एक काने दलालने आँख मटकाते हुये कहा—'बच्चूकी पूरी झोपड़ी होलीमें न डलवादूँ तो मेरा नाम।' कहकहा लगा और समर्थन मिला।

लड़के स्वभावतः उत्पाती होते हैं और फिर कोई उभाड़ने वाला हो तो कहना ही क्या। रात्रिके आठ बजे पण्डितजी पीपलके नीचे बैठे कथा सुना रहे थे। पता नहीं अन्धेरेसे कहाँसे एक दल छिपा आया। कथामें श्रोता वक्ता तल्लीन थे। किसीने नहीं देखा कि कब पण्डितजीकी झोपड़ीके फूसके दोनों छप्पर उतार लिये गये। जब भीड़ उन्हें लेकर कुछ दूर हट गयी, तब लड़कोंने कहकहा लगाया।

पण्डितजीने देख तो लिया, पर उठे नहीं व्यासासन-से। श्रोताओंमें-से बहुतेरे दौड़े। व्यर्थ था दौड़ना। लड़कोंने समीप ही रुई बाजारकी होलीमें छप्पर पटके और भाग खड़े हुये। काना दलाल ठहाके लगा रहा था। होलीमें पड़ी वस्तु निकाली तो जा नहीं सकती। लोग लौट आये उदास होकर।

बड़ी कठिनतासे दूसरे दिन पण्डितजीकी झोपड़ीपर ज्वारके डण्ठलोंके पूले रख कर छायाकी जा सकी। अब छप्पर तो तब बनेगा, जब उसके लिए पर्याप्त अर्थ संग्रह हो जायगा। ज्वारके पूले तो मजदूरोंने एक-एक, दो-दो, करके दे दिये थे, जिनके पास थे। किसी प्रकार धूपका बचाव तो हो ही गया। पण्डितजीने इतने सबपर भी किसीसे कुछ कहा नहीं।

× × ×

'पूरा ढोंगी, बगुला भगत है।' भीड़ पूर्णतः उत्तेजित थी। 'अब पता चलेगा कि क्या फल होता है विश्वासघात-का।' बेचारे पण्डित मूर्छित पड़े थे। सारे शरीरपर लाठियों और जूतोंके दाग थे। सिर फट गया था और उससे तथा शरीरसे रक्त प्रवाहित हो रहा था। रुई बाजारकी धूलि भरी भूमिमें वे रक्त लथपथ पड़े थे। किसीकी सहानुभूति नहीं थी उनसे। कोई नहीं था उन्हें उठाने वाला।

'मजदूरोंका हितैषी बनता था।' किसीने व्यङ्ग किया।

'मैनेजरसे मोटी रकम मिली होगी।' दूसरा स्वर उठा। 'नोटोंके बण्डल किसे नहीं फोड़ लेते।' पता नहीं कितनी समालोचनाएँ चल रही थीं।

'पुलिस आ रही है।' एक लारी आती दिखायी दी। भीड़ पलक मारते इधर-उधर बिखर कर लुप्त हो गयी। खम्भेपर लगी बिजलीके प्रकाशमें रक्त सने आदमीको देखकर लारी रुकी। घायलको पुलिस वालोंने उठा लिया और लारी चली गयी। केवल दो व्यक्ति लारीके वहीं उतर गये।

नर्मदा मिलमें हड़ताल चल रही है। मिलका फाटक पण्डितके झोपड़ेके सामने ही है। किसीने मैनेजरसे मिलकर कुछ बाहरके मजदूरोंको गुप-चुप मिलमें पहुँचा दिया था। यद्यपि उन नये मजदूरोंकी संख्या अत्यल्प थी, परन्तु हड़तालियोंको भड़कानेके लिए यही पर्याप्त था। उनके पेटका सवाल था। उन्होंने निश्चय कर लिया था कि वे उस व्यक्तिका पता लगा ही लेंगे जो इन मजदूरोंको लाया है। उसे वे क्षमा नहीं कर सकते।

पण्डितका झोपड़ा मिलके सामने है। उन्होंने देखा है कि रात्रिके अन्धेरेमें दो दिनसे एक व्यक्ति कुछ आदमियोंके साथ आता है। सन्तरी उसके आते ही द्वार खोल देते हैं। उसे वे पहचानते हैं। मिलके फाटकपर जो प्रकाश है, उसमें उन्होंने उसे भली प्रकार देखा है कि बाहरसे आने वाले मजदूर देहाती किसान हैं। वे बिना सीखे मिलमें कुछ कर नहीं सकते। मिल वालोंने हड़तालियोंका साहस तोड़नेका यह जाल मात्र रचा है।

आज सन्ध्याको जब मजदूर फाटकपर एकत्र होकर मजदूर लाने वालेके सम्बन्धमें विचार कर रहे थे, मजदूरोंके आनेपर चिन्तित हो रहे थे, पण्डितने उन्हें समझाना चाहा। समझनेको कोई प्रस्तुत नहीं था। प्रश्नोंकी झड़ी लग गयी। जब मजदूर छिपकर पता लगानेपर तुले ही थे तो आज बात छिप न सकेगी। पण्डितने समझ लिया कि आज मजदूर लाने वालेका क्या होनेवाला है। उनका हृदय काँप उठा। एक आदमी और उत्तेजित भीड़-की-भीड़। उन्होंने कुछ निश्चय कर लिया।

'अपराध तो मेरा ही है।' भीड़को समझाते हुए उन्होंने कहा—आगेकी बात कौन सुनता है? पूरा वाक्य सुननेका धैर्य किसमें? भीड़ उत्तेजित तो थी ही। 'मारो। मारो इस धूर्तको! भली प्रकार पीटो।' गालियोंके साथ हाथ चलने लगे। कहाँ तक कोई सह सकता है। पण्डित लड़खड़ाकर गिर पड़े। कौन जाने कितनी चोटें गिरनेपर कीं।

× × ×

'हम रुईके दलाल हैं। हमें सूत ही बनाना चाहिये। सुई नहीं।' बड़े कष्टसे अस्पतालकी खाटपर पड़े पण्डित बोल रहे थे। नर्स उन्हें बोलनेसे रोक रही थी। 'सूई छिद्र करती है, किन्तु सूत दबकर, बटा जाकर भी छिद्र ढँकता है।'

'आपको मैंने कितना सताया है। झोपड़ी तक····।' काना दलाल हिचकियाँ ले रहा था और बार-बार पैरोंपर

लुढ़क रहा था। नर्स उसे हट जानेको कह रही है, इसको उसे कोई चिन्ता नहीं थी। 'आपने मुझे ही बचानेके लिए, मेरा दोष छिपानेके लिए अपने सिरपर ले लिया।'

उसके परितापका अन्त नहीं था।

'व्यर्थ पश्चाताप कर रहे हो तुम!' कराह उठे थे पण्डित हाथ उठानेमें भी। शरीरका कोई भी भाग चोटोंसे खाली नहीं था। 'अन्ततः तुम मेरे समव्यवसायी हो। मैंने तो कर्तव्य मात्र किया है।

अस्पतालके बाहर मजदूरोंकी भीड़ चिल्ला रही थी। उसे अपनी भूलका पता लग गया था। उसे काने दलालसे प्रतिशोध भी तो लेना था। काना दलाल भावावेश-से बाहर निकला। भीड़ आगे बढ़ी किन्तु सीढ़ियोंपर-से नर्सने हाथ उठाकर रोक दिया। 'यदि तुम्हें पण्डितका ध्यान है तो उन्होंने कहलाया है कि इनको क्षमा कर दो। आज भीड़ने जयनादके साथ स्वीकार कर लिया था कि उनके पण्डित सच्चे साधु हैं।

जंगम प्रयाग

मुद मंगलमय सन्त समाजू।
जो जग जंगम तीरथराजू ॥

'कितना आनन्द, कितना उत्साह, कितना वैभव है वहाँ ?' रामलगनने आज हवन और ब्रह्मभोज कराया है। प्रयागकी तीर्थ-यात्राके उपलक्ष्यमें यह उत्सव समारोह है। ब्राह्मणोंके भोजन कर लेनेपर उसे बैठनेको फुरसत मिली है। कभी इधर, कभी उधर वह दिनभर दौड़ता रहा है। वह ला, यह उठा, सामानोंको व्यवस्थाने व्यस्त कर रखा था।

द्वारपर एक पुरानी दरी बिछी है। गाँवके मुखियाके यहाँसे माँगकर आयी है। सम्भवतः मुखियाके पिताने खरीदी होगी उसे। विवाह, कथा आदिके अवसरोंपर माँगकर गाँव भर उसका उपयोग करता है। एक मैला चीकट तिरपाल भी बिछा है। गाँवके बनियेका होगा। अभी सजातीय ग्राम भाई भोजन करनेको हैं। सब लोग आजावें यो पंगत बैठे। प्रतीक्षाका समय इधर-उधरकी बातोंमें बीतना ही है। हुक्का एक हाथसे दूसरे हाथमें आता-जाता है। चिलम बार-बार भरी जाती है। हुक्केकी गुड़गुड़ाहट बातचीतमें और मधुरता ला देती है और

मुखसे निकलकर आकाशमें उमड़-घुमड़कर बढ़ता धुआँ ? वह न हो तो यहाँ बैठे कौन ?

'यह तो चल गयी।' अपनी बातको बीचमें ही छोड़कर रामलगनने हुक्केसे चिलम उतारकर छोटे भाईकी ओर बढ़ादी। वह उसे लेकर आलेसे तम्बाकू उठाता उस कोनेमें जा बैठा, जहाँ राखका छोटा-सा ढेर पड़ा था। कुरेदकर दबा उपला निकाला उसने राखमें-से और चिलमपर कंकड़ रखनेके पश्चात तम्बाकू बुरका दी। अग्निके टुकड़ोंसे चिलम ऊपर तक भरदी गयी। दोनों हाथोंमें चिलमको लेकर नीचेसे फूँक मारदी। राख ऊपरसे उड़ गयी।

'तुम्हीं लगाओ।' हुक्का अभी नीचे घुटनेके पास पड़ा था, छोटे भाईने उसपर चिलम रखकर रामलगनकी ओर बढ़ाया। सभीको तैयार चिलम अच्छी लगती है। सुलगानेमें उत्साह नहीं दिखाता कोई भी। खड़े-खड़े ही छोटे भाईने एक मिनट हुक्केका मजा लिया और तब बड़े भाईको दे दिया और एक ओर चला गया।

'गङ्गा-यमुनाके संगमपर बड़ी भारी भीड़ रोज स्नान करती है।' हुक्केके बिना बातचीत फीकी होगयी थी। रामलगनने उसे गुड़गुड़ाया। दस-पाँच बार और तब दूसरेको देते हुए दुगुने उत्साहसें अपनी यात्राका वर्णन प्रारम्भ किया। पण्डोंकी खींचतानको आज वह भूल चुका था।

'भैया रामलगन, काश तुमने बम्बई देखा होता।' भोला पूरे दस महीने बम्बई रह आया है। भला वह क्यों चुपचाप सुनता रहे। उसे रामलगनके बहकनेपर हँसी आ रही थी। 'एक-एक मकान इतने ऊँचे हैं कि ऊपर देखो तो सिरकी पगड़ी गिर जाय। भीड़, दुकानोंकी चमक-दमक और सजावटका तो पूछो ही मत। प्रयाग-में भला समुद्र कहाँ। एक-एक जहाज आते इतने बड़े कि उसमें अपने जैसे चार गाँव समा जायँ। मोटरों, ट्रामों और बसोंके मारे हमारे तुम्हारे जैसे तो सड़क पार ही नहीं कर सकते।' बोलता ही गया वह। उसे सिद्ध कर देना था कि रामलगन कुछ नहीं है उसके सम्मुख। वह प्रयाग देख आया तो क्या हुआ। बम्बईके सम्मुख प्रयागकी क्या महत्ता।

'बम्बईमें कोई तीर्थ है?' रामलगनने बड़े कौतुक-से सुना यह वर्णन। यद्यपि भोला पूरे गाँवको कई बार सुना चुका था, जहाँ भी दो-चार व्यक्ति बैठते, वह यही चर्चा प्रारम्भ करता और लोगोंकी उत्सुकता मर चुकी थी। वे उकताने भी लगे थे। रामलगन तीर्थ करने गया था। उसके लिए वह नवीन वर्णन था।

'वहाँ बड़े-बड़े अंग्रेज साहब रहते हैं। चीन देशके लोग रहते हैं। जहाजोंसे विलायतसे साहब लोग आते हैं।' भोलाने उत्तर दिया प्रश्नका।

'तब तो बड़ा भारी मन्दिर होगा। गङ्गाजी भी होंगी।' रामलगन अपनी धुनमें था।

'वहाँ भला गङ्गाजी कहाँ। वह कोई तीर्थ थोड़े है। तुम इतना भी नहीं जानते।' बहुत विज्ञकी भाँति भोलाने सगर्वसे कहा। 'तुमने तो देखा ही नहीं। मेरे साथ चलो तो दिखाऊँ।'

'तीर्थ नहीं है?' रामलगन जैसे आकाशसे गिरा। उसे बम्बईके ऐश्वर्यमें कोई सन्देह नहीं था। भोलाके वर्णनको वह अक्षर-अक्षर सत्य मानता था। इतनेपर भी उसका श्रद्धालु हृदय कह रहा था कि कुछ भी हो, बम्बई प्रयागके बराबर नहीं हो सकता। तुच्छ है वह, क्योंकि वह तीर्थ जो नहीं है।

× × ×

'क्यों भैया, मुखिया ठाकुरके यहाँ हो आये क्या? भोलाने कुछ मुसकाते हुए पूछा। उसने देखते ही समझ लिया था कि रामलगन अभी गया नहीं है और जानेके रङ्ग-ढङ्ग भी नहीं है।

'भैया, मेरी ओरसे ठाकुरसे विनती कर देना।' बड़े सरल ढङ्गसे उत्तर मिला। 'आनेको तैयार ही हुआ था कि सन्तोंने द्वारपर आवाज दी। भला हम गरीबोंके ऐसे भाग्य कहाँ कि साधु-सन्तोंकी सेवा मिले। उनके आटा-सीधाका बन्दोवस्त करके अवश्य आऊँगा जुहार करने।'

'ठाकुर गाँवके राजा हैं।' भोलाने एक प्रकारसे धमकी दी। 'आज उनके लड़केके मुण्डनके समय सारा गाँव बेगार देने जा रहा है। न हो तो तुम दो घड़ी पीछे

पूछकर लौट आना। उन्हें नाराज करना ठीक नहीं और आज तो उनके यहाँ दरोगा साहब भी आवेंगे।'

'उनके गाँवमें रहते हैं। उन्हींका दिया खाते हैं। उन्हें भला नाराज करके कहाँ जायँगे।' रामलगन बहुत सीधा व्यक्ति है गाँवमें। 'सन्त न आगये होते तो जरूर तुम्हारे ही साथ चलता। बिनती कर देना भूलना मत।' उसे भय तो प्रतीत हो ही रहा था।

'बिनती तो मैं कर दूँगा।' भोलाने निरपेक्षता दिखलायी। 'लेकिन मेरी रायमें तुम्हें चलना अभी चाहिये था। विनतीसे वे मान जायँ तो कुशल समझना चाहिये।' वह इस प्रकार चलने लगा, जैसे उसे बड़ी शीघ्रता है और ठाकुरके बदले नाराज होनेका भी अधिकार उसीको मिल गया है।

'मैं आऊँगा अवश्य' रामलगनने आगे बढ़कर फिर प्रार्थना की। 'इसे कहना मत भूलना। दो घड़ीमें ही आता हूँ और यहाँ साधुजनोंका सत्संग होगा, मैं प्रार्थना करूँगा कि रामायण भी सुनावें वे। तुम दो घड़ी शामको आकर सुन जाना।'

भोलाने ध्यान नहीं दिया। मन ही मन वह हँस रहा था। ठाकुरके यहाँ नाच है। नगरकी प्रसिद्ध वैश्या आ रही है। सुना है कि कुछ गवैये भी आवेंगे। एक भाँड़की मण्डली भी बुलायी है उन्होंने। राजा दैव हैं। उन्हें कमी भी क्या है। बुढ़ापेमें भगवानने यह एक ही पुत्र दिया है। अब जी खोलकर खर्च न करें तो भला धन किस दिन

काम आवेगा। आज इस उत्सवमें इस खूसटके यहाँ साधुओंकी टाँय-टाँय सुनने कौन जायगा। यह रामलगन भी कितना मूर्ख है। उसके प्रारब्धमें ही यह नाचरङ्ग देखना नहीं लिखा तो कोई करे क्या।

नीमके नीचे चबूतरेपर साधुओंने आसन डाल दिया था। एक महात्माने कपड़ेका सफेद बड़ा-सा छाता खोल कर गाड़ दिया चबूतरेमें। उसके नीचे उनके ठाकुरजीका सिंहासन लग गया। झोलेमें-से पूजाके पात्र, चन्दन, शीशा और जाने क्या-क्या अटर-सटर निकल आया। कुछ बच्चे तो साधुओंके पाँच सेर जल आने वाले लोटेको ही कौतुकसे देख रहे थे। वे इसलिए जुट आये थे कि ठाकुरजीकी पूजाके पश्चात् शंख बजेगा और तब उन्हें प्रसाद मिलेगा। रामलगन एक टोकरा उपले लेकर आया और चबूतरेसे नीचे उसने उनका ढेर करके सुलगा दिया। फिर चला गया वह हंडिया और आटा-दाल लेने। ताँबेके कलशेमें जल वह पहिले रख गया था।

उधर भोला सोचता जारहा था आज बच्चूको भली प्रकार पाठ मिलेगा। प्रयाग क्या हो आये, पैर जमीनपर नहीं पड़ते। उसे बड़ी इर्ष्या थी। मन-ही-मन रामलगनसे जला करता था वह। क्यों रामलगन बम्बईकी महत्ता स्वीकार नहीं करता। क्या है प्रयाग बम्बईके सम्मुख। अन्ततः बम्बईकी महत्तामें ही तो उसकी महत्ताका अन्तर्भाव हो चुका था।

रामलगन व्यस्त था। कभी आटा, कभी आलू। वह एकके पश्चात दूसरी वस्तुएँ ला रहा था। सब सामग्री

आजानेपर आटा गूँधनेमें लग गया। बाटियाँ बना दीं गोल-गोल। एक महात्मा अग्निके समीप बैठे भण्डारा चेता रहे थे। अन्ततः पंगत बैठी। साधुओंने जय-जयकार की। रामलगनका हृदय बासों उछल गया, जब साधुओंने उसकी जय बोला। हरीहर हुई और पंगत उठनेपर रामलगनने सपरिवार सीथ प्रसाद पाया।

मुखिया ठाकुर, उनके यहाँका उत्सव, बेगार, सब विस्मृत हो गयी। महात्माओंने प्रसादके अनन्तर उपदेश प्रारम्भ कर दिया। रामलगन उन्हें बीच-बीचमें चिलम भरकर देता जाता था और बड़ी श्रद्धासे हाथ जोड़े उनके वचनामृतका पान कर रहा था। कभी-कभी बोलता था और वह भी इतना ही 'सत्य बचन महाराज।'

× × ×

'सरकारका क्या प्रभाव है। क्या आनन्द हो रहा है।' भोला अवसर ढूँढ रहा था ठाकुरसे मिलनेका। वे वृद्ध अतिथियोंकी आवभगतमें लगे थे। जब नाच प्रारम्भ होगया और सब लोग तम्बूमें बैठ गये तो वे वहाँसे धीरेसे खिसक आये। शान्तिसे एक चिलम तम्बाकू भी आज पी नहीं सके थे। नौकरने गड़गड़ा चढ़ा दिया और नली मुखमें लेकर पलंगपर लेट गये वे। भोलाको नाच देखनेको अपेक्षा रामलगनकी शिकायतमें अधिक उत्साह था। वह भी धीरेसे खिसक आया।

'यह तो तुम्हीं लोगोंके परिश्रमका फल है।' ठाकुर बड़े सीधे हैं। गाँववालोंको कोई शिकायत उनसे कभी

नहीं होती। बहुत सरल व्यवहार है उनका। वैसे तो अधिकारी लकड़ीका बना भी बुरा होता है।

'हम तो आपकी प्रजा हैं। हमारा धर्म है आपकी सेवा करना।' भोलाने अपनी बातकी भूमिका बनायी। लेकिन कुछ ऐसे भी लोग हैं, जो इस उत्सवको देखकर जलते हैं। वे झाँकने तक नहीं आये।'

'कौन नहीं आया?' नली मुखसे हटाकर भौंहोंपर बल देते हुए ठाकुरने पूछा। उन्हें यह अवसर नहीं मिला था कि आने-न आनेवालोंकी निगरानी कर सकें।

'एक तो रामलगन ही है।' भोलाको अवसर मिला। 'आना तो दूर, वह दूसरोंको भी यहाँ आनेसे मना कर रहा था।'

'अच्छा!' ठाकुरने नली फिर मुखमें दे ली। उठा हुआ सिर मसनदपर रख लिया और भोलाकी ओर इस प्रकार देखा, जैसे अभी और सुनना चाहते हों वे।

'प्रयाग क्या हो आया, उसका दिमाग ही नहीं मिलता।'' भोलाने नमक-मिर्च लगाया। 'उसके यहाँ कुछ वैरागी आगये हैं, सो कहता-फिरता कि ठाकुरके यहाँ नाचमें मत जाओ। मेरे यहाँ रामायण होगी। मैंने तो ऐसा फटकारा कि बच्चूकी बोलती बन्द हो गयी। भला रामायण करानेके लिए दूसरा समय नहीं था उसके पास।'

'जैसे बम्बई प्रयागके बराबर नहीं हो सकता' बूढ़ा ठाकुर पूरा अनुभवी था और जानता था कि भोला बम्बईके

गुण गाते नहीं थकता है। बड़ा गर्व है उसे बम्बई हो आनेपर।' वैसे ही नाचकी क्या बराबरी सत्संगसे। ठाकुरका रोष दूर होगया था और वह हँस रहे थे धीरे-धीरे।

'और भी तो अवसर था सत्संगको।' भोलाका मुख उतर गया था। उसने अन्तिम प्रयत्न किया ठाकुरको उभाड़नेके लिए।

'बम्बईमें ऐश्वर्य आनन्द बहुत है—बहुत अधिक। लेकिन प्रयागमें आनन्द ऐश्वर्यके साथ मंगल है। वहाँ जानेसे परलोक भी सुधरता है। जीवका कल्याण होता है।' ठाकुरने ध्यान नहीं दिया—भोलाकी बातपर। 'नाचमें आनन्द है, मनोरञ्जन है, पर वह नरकका रास्ता भी है। साधुजनोंसे कल्याण भी होता है, आनन्द तो वहाँ भी है ही। रामलगन तो प्रयाग हो आया और उसके द्वारपर आज ये सन्त चलते-फिरते प्रयाग आगये हैं। तुम जल्दीसे देख आओ। यदि रामायण होती हो तो मैं एक घड़ी चलकर सुन आऊँ। यहाँ सब नाचरङ्गमें लगे हैं तब तक।'

गंगा-यमुना-सरस्वती

राम भक्ति जहँ सुरसरि धारा ।
सरसइ ब्रह्म बिचार प्रचारा ॥
विधि निषेधमय कलिमल हरनी ।
करम कथा रबिनन्दनि बरनी ॥

नगरसे डेढ़ मील ही दूर था वह स्थान ; किन्तु उसकी स्थितिने उसे इतना सुनसान एवं एकान्त बना दिया था कि रात्रिका अन्धकार फैलना प्रारम्भ होते ही लोग उधर जानेमें हिचकिचाने लगते थे। उस ओर खेतोंका प्रारम्भ नगरकी समाप्तिके साथ हो जाता था। डेढ़ मील-पर एक सरोवर था आधा मील लम्बा-चौड़ा। सरोवर चारों ओरसे पक्का बँधा हुआ ; किन्तु उसमें जलका नाम नहीं। इससे वह और भयानक लगता था। सरोवरका वह तट जो नगरकी ओर था, उसपर कुछ साधुओंकी कुटियाएँ थीं और एक मठ भी। यह था दक्षिणका तट। पूर्वके तटपर आम्रवृक्ष थे जो उत्तर तट तक चारों ओर फैले थे। इनपर कपि-सेनाका स्थायी निवास था और वे भी चार-पाँच सौ। जब रात्रिके अन्धकारमें वे यदाकदा किलकते या किच्-किच् करते—क्या पूछना वहाँकी स्थितिका। यह सब इसलिए और भी प्रभावकारी था कि सरोवरके पश्चिम तटपर पक्के घेरेके भीतर नगरका

श्मशान था और उत्तर तटकी ओर कुछ ही दूरीपर नगरके लोग मृत शिशुओंको गाड़नेका स्थान बना चुके थे।

किसी समय वह सुन्दर स्थान रहा होगा। लेकिन अब तो उसके विस्तारने उसकी उदासीमें वृद्धि ही की थी। चारों ओर घेरेकी दीवाल खण्ड़हर हो चुकी थी। कहीं-कहीं उसके अवशेष भी पहचान नहीं पड़ते थे। उस घेरेके भीतर मृत संन्यासियों या गोसाइयोंकी समाधि-पंक्तियां थीं। एक शंकरजीका मन्दिर, एक किसी सिद्ध पुरुषका, एक-दो छोटे मन्दिर दुर्गाजी एवं कालीके। यत्र-तत्र समाधियोंपर बनी छोटी पक्की मढ़ियाँ। एक कुआँ, एक अच्छा-सा कमरा और एक कमरोंकी पंक्ति, जिसमें एकको छोड़ शेषकी छतें भूमिपर गिरकर उन कमरोंको एक-चौथाईसे अधिक भर चुकी थीं।

दिनमें दर्शनार्थी आते थे। मन्दिरके अधिकारी गोसाइँ लोग रहते थे। जो एक अच्छा कमरा था, उसमें चटाइयाँ, पूजाके उपकरण होते थे। लेकिन सन्ध्या हुई और बस। फिर वहाँ कौन टिके। सम्मुख वही सरोवर। पीछे सड़कके पार बच्चोंके गाड़नेका स्थान और दाहिने नगर-श्मशान। वृक्षोंपर कपियोंकी उछल-कूद या परस्पर कलहका यदा-कदा शब्द, घेरेमें चारों ओर खण्डहर। मन्दिरके सम्मुख गिरे हुए कमरोंकी पंक्तिमें जो कमरा बच रहा था, वह अतिथियोंके लिए सुरक्षित था। पूरे घेरेमें रात्रिको स्थायी रूपसे एक समाधि-मढ़ियामें द्वार लगवाकर रहनेवाले एक वृद्ध साधु थे। मैं नहीं जानता,

वे कबसे वहाँ थे । दिनमें वे नगरमें भले चले जायँ, रात्रिमें तो उसी मढ़ियामें ही विराजते ।

'मुझे प्रयाग जाना है ।' पता नहीं कैसे इन महात्माको एक धुन आगयी । लोग कहते हैं कि वे औघड़ हैं । उनकी कुटियामें चिथड़ोंकी एक छोटी ढेरी तो है । अब आप इस ढेरीको उनका बिस्तर कहलें या ओढ़नेके वस्त्र । वस्त्र एवं कम्बल आदिकी झंझट वे नहीं पालते । एक बड़ा-सा पिचका टीनका कटोरा, एक खप्पर, एक मिट्टीका घड़ा—ऐसे ही कुछ संग्रह हैं उनके । वे प्राय: जब प्रसन्न होते तो कहते—'इस सुनसानमें मैं चोरकी प्रतीक्षा करता हूँ। कोई चोर आवे तो कुछ तो दे ही जायगा ।' बात है ऐसी ही । उन चिथड़ोंकी बला ले जाने तो कोई आनेसे रहा। जो पहुँच जायगा, वह साधुको और कुछ नहीं तो प्रणाम करके तो जायगा ही ।

इधर मुझे भी सनक है कि रात्रिमें तनिक एकान्त स्थान चाहिये । सायंकालके पश्चात् आ जाता हूँ और वह अतिथियोंके लिए सुरक्षित कमरा कुछ घण्टे मेरा आवास रहता है । अब यदि ये साधु-महाराज प्रयाग चले गये तो रात्रिको इतना सुनसान एकान्त············यहाँके गोसाईं लोगोंके लिए तो एक समस्या हो गयी है । रात्रिको स्थान पूरा सुनसान हो जायगा । लेकिन साधुकी सनकका कभी कहीं उपाय हुआ भी है या यहीं हो जायगा । कल सायं-काल वे महाराज चल ही तो पड़े थे अपना खप्पर और कटोरा लेकर ।

× × ×

'जय सियाराम जय जय सियाराम !'

आज मेरे लिए यह नवीन बात थी। सायंकाल इच्छा नहीं होती थी उस मन्दिरमें जानेकी। वहाँके साँय-साँय करते सुनसानकी कल्पनासे ही पैर शिथिल होते थे; किन्तु अभ्यासवश चल पड़ा था। सोचा था कि आज बिना रुके लौट आऊँगा। सरोवरके दूसरे किनारेसे ही करतालकी झंकार और कीर्तन-ध्वनि सुनायी पड़ी। भला वहाँ आज इस समय कीर्तन? मनमें उत्साह आया और पैरोंमें गति।

जो लोग अब तक बैठे थे, वे धीरे-धीरे उठते जा रहे थे। अन्धकार बढ़ रहा था और इस स्थानपर रात्रि तक रुकनेका साहस वह करे जिसके पीछे कोई रोनेवाला न हो। मैं जब पहुँचा, अन्तिम तीन-चार व्यक्ति भी अपने जूते सम्हाल रहे थे।

'जय सियाराम जय जय सियाराम !'

करताल गूँज रहा था। इकहरा शरीर, गौर वर्ण, मस्तकपर जटाजूट—वे तेजोमय अपनी करतालकी ध्वनिके साथ नृत्य कर रहे थे। उनको पता नहीं था कि कौन आया, कौन गया। नेत्रोंसे अजस्र धाराएँ चल रही थीं। सन्ध्याकी बढ़ती निस्तब्धतामें उनका नामघोष जैसे दिग्देवताओंके स्वरसे विस्तीर्ण हो जाता हो। मुझे अत्यन्त आश्चर्य हुआ—मेरे वे परिचित साधु यहीं थे और आज वे औघड़ अपना चिमटा बजाते हुए अपने आपको भूल चुके थे। उनका वह उद्दाम ताण्डव—मैंने कभी सोचा

तक नहीं था कि उनके इस अस्त-व्यस्त फक्कड़ वेशके भीतर इतनी गम्भीर रसधारा है।

'जय सियाराम जय जय सियाराम।'

चलता रहा वह कीर्तन। चलता रहा वह नृत्य। कब तक? मुझे स्वयं पता नहीं। भगवन्नाम संकीर्तन जहाँ होता हो, वहाँ पहुँचकर मौन बने रहना नामापराध है और मैं उसके लिए प्रस्तुत नहीं था।

'आप तो प्रयाग जा रहे थे?' जब कीर्तन समाप्त हो गया, मैंने अवसर पाकर अपने परिचित सन्तसे पूछा।

'जा तो मैं प्रयाग ही रहा था, लेकिन जब प्रयागराज ही मेरे यहाँ आने लगे तो उनका सत्कार तो करना चाहिये न।' उन सन्तने हँसकर कह दिया। इन साधुओंकी अपनी भाषा होती है। उसमें भी औघड़ तथा वैरागी साधुओंकी भाषाको तो मत पूछिये। जो उसके मर्मको जान पाते हैं, धन्य हैं वे।

'तुमने गङ्गा-स्नान तो कर ही लिया, सरस्वती तथा कालिन्दीमें कल गोते लगा लेना। त्रिवेणी-स्नान तुम्हारा भी हो जाय, यह व्यवस्था मैं साथ ले आया हूँ।' रात्रि पर्याप्त व्यतीत हो गयी थी। इस समय इन पहेलियोंको सुलझानेका अवकाश नहीं था। मुझे आज यहीं कहीं शयन करना ठहरा और गर्मीके दिनोंमें भला क्या उलझन इसमें।

× × ×

'एकरस अविकारी अखण्ड निर्विकार अखण्ड भूमा परम पुरुषमें न मायाकी सत्ता है और न अज्ञानकी।

जीव उसी चिद्घनका अंश है। लेकिन अनन्त कालसे अन्तःकरणके संसर्गमें पड़कर वह तद्रूप हो रहा है। जड़का संसर्ग तो जड़ता देगा ही।' मैं दूसरे दिन प्रातःकाल नित्यकर्मसे निवृत्त होने नगरसे बाहर उसी स्थानपर चला गया। रात्रिमें जिन महापुरुषके दर्शन किये थे, उनके विषयमें कुछ और जाननेकी उत्कण्ठा थी। वहाँ वे दोनों सन्त स्नानादिसे निवृत्त हो चुके थे। जहाँ दो घड़े होते हैं, वे परस्पर टकराते हैं। जहाँ दो असभ्य या कुत्ते होते हैं, परस्पर लड़ते हैं। जहाँ दो व्यापारी होते हैं, सौदा पटाते हैं। जहाँ दो सन्त होते हैं, सत्सङ्ग चलता है। आज यहाँ तत्वज्ञानकी चर्चा चल रही थी।

'संसारकी अधिकांश प्रवृत्ति तथा सम्पूर्णासक्ति मूर्खतापूर्ण है। बिना विचार किये आँख मूँदे सब दौड़ रहे हैं। कोई सोचता ही नहीं कि इस प्रयत्नका तात्पर्य क्या? इसकी सफलतासे लाभ क्या? धनके लिए, गृहके लिए, स्त्रीके लिए, पुत्रके लिए, यशके लिए सब अन्धाधुन्ध श्रममें जुटे हैं। न्याय-अन्याय, धर्म-अधर्म कोई देखना ही नहीं चाहता। ये सब पुरुष अपनेको बुद्धिमान समझते हैं, पर सोचते तक नहीं कि हमारा प्रयत्न सफल ही हो जाय तो उसमें कितना सुख मिलेगा और कितना दुःख। समस्त पाप शरीरकी आसक्तिसे ही होते हैं। यह आसक्ति है मूर्खताके कारण। सब कहते हैं कि संसार अज्ञानमूलक है, पर यह नहीं समझते कि अज्ञान और मूर्खता दो वस्तु नहीं हैं। मूर्खताने ही इस अन्धी प्रवृत्तिको टिका रखा है।' मेरी मूर्खता ऐसे तत्वज्ञानमें मुझे रुचि नहीं रखने देती। नित्य-

कर्मसे भी निवृत्ति होना था। मन्दिरके पुजारी तथा एक-दो सज्जन और आ गये थे अब तक ; लेकिन मेरी ही भाँति किसीको भी अपनी अज्ञताके विपरीत सुनना-सोचना प्रिय नहीं था। कोई टहल रहे थे, कोई दूसरी ओर कुछ लोक-चर्चामें लगे थे। पुजारीजीको पूजाकी व्यवस्था करनी थी। इन साधुओंके चक्करमें संसारके लोग सहज फँसने लगें तो चल चुका संसार। सृष्टिकर्त्ताने इसीलिए तो मन तथा इन्द्रियोंकी बहिर्मुख प्रवृत्ति बनायी है कि कोई बाबाजी झटपट उनके प्रपञ्चको गड़बड़ न कर सकें।

'आप दोनों ही यदि आज मेरे यहाँ भिक्षा स्वीकार करनेकी कृपा करें..........।' मैं स्नानादिसे निवृत्त होकर लौटा तो देखता हूँ कि सन्तोंकी ज्ञान-चर्चा अभी तक चल रही है। केवल तनिक विराम हुआ है उसमें इसलिए कि नगरके एक सम्मान्य सज्जन हाथ जोड़कर कुछ कहनेकी मुद्रामें बैठ गये। उन्हें केवल सन्तोंको अपने यहाँ भोजन करानेका पुण्य प्राप्त करना था। सन्तोंकी ज्ञानगोष्ठीसे उनके मनका भी कोई लगाव नहीं था।

'नारायण, आज तो एकादशी है।' उन नवागत सन्तने उन्हें निराश कर दिया।

'मैं फलाहारकी व्यवस्था करदूँ और आज्ञा हो तो यहीं ......' आमन्त्रित करनेवाले भद्रपुरुषने अपने प्रस्तावमें संशोधन कर दिया।

'अरे सो कुछ नहीं।' खुलकर हँसे वे सन्त। उनका वह उन्मुक्त बाल-हास्य—लेकिन एक क्षणमें वे गम्भीर हो गये। 'एकादशीको तो निर्जल व्रत ही करना चाहिये।

दिनभर भगवान्‌का स्मरण, चिन्तन और रात्रि भर जागते हुए उन सर्वेशका आराधन, उनके मङ्गलमय नामोंका कीर्तन करना ही एकादशी व्रत है। गृहस्थको तो अवश्य ही भगवान्‌को प्रसन्न करनेवाला व्रत अपने पूरे परिवारके साथ करना चाहिये।' अब चल पड़ी एकादशी व्रतकी विधि, उसमें क्या करना चाहिये, क्या नहीं करना चाहिये। और प्रसङ्ग ही चल पड़ा तो अनेक व्रतोंका भी विधान बताना ही ठहरा। महापुरुष अत्यन्त दयालु होते हैं। अनेक बार वे कड़वी औषधिके समान बलात् उपदेश करनेमें यह भी नहीं देखते कि उनकी इस कृपा-धाराका प्रवाह श्रोताको उबा देनेवाला भी होगया है या नहीं। पूरा विधि-निषेधमय गृहस्थ-धर्म, श्राद्ध, देवाराधन आदि समझा कर डेढ़-दो घण्टेमें तो सन्तने संक्षिप्त प्रवचन समाप्त किया।

ज्ञान-कथा तो पहिले ही समाप्त हो चुकी थी। इस कर्म-कथाके श्रोताओंको नगर जाना था। सन्त भी किसी कार्यसे एक ओर हटे। अब मेरे परिचित महात्माने कहा—'कर लिया तुमने प्रयाग स्नान ?'

मैं जानता हूँ कि सकल कलिकल्मष-नाशिनी भगवान्‌की भक्ति ही है, जिसे भगवती भागीरथीकी उपमा दी जा सकती है। सरस्वती तो ज्ञानकी अधिष्ठात्री ठहरीं और धर्म-अधर्मका निर्णय करने वाले भगवान् धर्मराजकी बहिन कालिन्दीकी उपमा विधि-निषेधमय शास्त्र-प्रवाहसे ही दिया जा सकता है। मैंने हँसते हुए मस्तक झुकाकर कह दिया—'कृपा करके लोकस्रष्टाने मुझे गङ्गा तटपर उत्पन्न किया। मुझे तो उनकी निर्मलधारा गोता लगानेको मिलती रहे, इतना ही बहुत है।'

त्रिवेणी

हरि-हरकथा बिराजत बेनी।
सुनत सकल मुदमंगल देनी॥

'यह किस सम्प्रदायके महात्माका आश्रम है?'

'क्यों? आपको सम्प्रदायसे क्या करना है उनके?'

'मैं इसलिए पूछ रहा था कि इनके यहाँ कथामें कोई विष्णु भगवानके गुण गा रहा है, कोई श्रीरामके और कोई श्रीकृष्णके।'

'लेकिन राम-कृष्ण-विष्णुमें वैष्णव कोई भेद मानते होते तो तीनोंके उपासक वैष्णव न कहे जाते।'

'पर वहाँ उसी उत्साहसे शिव-पुराण एवं देवीभागवतकी कथा भी तो सुनी है हमने और यह भी देखा है कि महात्माजी सभी कथाओंमें समान रूपसे तल्लीन हो जाते थे। सभीमें उनके नेत्र अश्रुवर्षा करते किसी भी थे। कथामें उनकी उपेक्षा या तटस्थताके कोई लक्षण दृष्टि नहीं पड़े।'

कुम्भका अवसर था। यमुना-गंगाके मध्य भागमें तो तम्बुओं तथा कुटियोंकी भरमार थी ही, गंगा-पार झूसी तटपर भी डेढ़-दो मील तक महात्माओं, महन्तों तथा सम्पन्न लोगोंके कैम्प पड़े थे। सबसे दूर उत्तर नयी एवं पुरानी झूसीके मध्य खेतोंमें था श्रीब्रह्मचारीजीका पण्डाल।

कई फाटक थे गंगा-किनारे। फूसकी कुटियोंकी पंक्तियाँ लगी थीं। फूससे ही अखण्ड संकीर्तन एवं कथा-पण्डाल बने थे खूब विशाल, खूब सजे हुए चित्रोंसे, अत्यन्त भव्य। कुम्भमें कहीं कोई पण्डाल इतनी भीड़से भरा नहीं रहता था। प्राय: सभी श्रद्धालु जन चाहे कहीं क्यों न ठहरे हों, एक बार दर्शनार्थ अवश्य आते हैं झूसी और झूसी आनेपर इस पण्डालका आकर्षण उन्हें बार-बार विवश करता है आनेके लिए।

अखण्ड संकीर्तन पण्डालमें तो अहर्निशि झाँझ, मृदंग बजते ही रहते हैं, कथा पण्डालमें भी प्रात: आठ बजेसे सायं ६ बजे तक कथाओंका क्रम चलता है। दो बजेसे तो बैठनेको स्थान नहीं रह जाता वहाँ। नित्यकी पूजा, पाठसे निवृत्त होकर श्रीब्रह्मचारीजी महाराज दो बजे ही कथा सुनने आ पाते हैं और फिर शाम तक बैठे रहते हैं।

एक उपदेशक समाप्त करता है और दूसरा प्रारम्भ। जनता अपनी रुचि एवं सुविधानुसार आती-जाती रहती है। कुम्भमें पधारे प्राय: सभी प्रसिद्ध रामायण या श्रीमद्-भागवतके कथा-वाचक विद्वान उपदेशक, आचार्य पीठा-धीश्वर, मण्डलीश्वर, महात्मागण आमन्त्रित हैं किसी-न-किसी दिन। प्राय: सभीने समय दे दिया है। अपने निश्चित समयपर पधारकर वे जनताको अपने वचनामृत-से परितृप्त एवं परिपूत कर जाते हैं।

द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, राम, कृष्ण, विष्णु, शिव, शक्ति, सभीका गुणगान होता है। सभीका विवेचन होता है। न विवाद होता और न समालोचना। सभी

शान्त सुनते हैं। उपदेशक भी अपनी कह जाते हैं और दूसरोंकी सुन जाते हैं। विचार-विनिमय चलता है अपने विशुद्ध रूपमें।

'वे श्रीकृष्णके आराधक हैं, श्रीमद्भागवतके उपासक हैं और हैं स्मार्त वैष्णव।' इस विचित्र सिद्धान्त एवं आराध्य गुण-गान सम्मेलनको देखकर दो व्यक्ति परस्पर चर्चा कर रहे थे। आजके संकीर्ण साम्प्रदायिक वातावरणमें यह उदारता उन्हें आश्चर्यमें डाल रही थी। उन्होंने भी साधुओं, सच्चे सन्तोंके समाजसे सम्भवतः कभी परिचय प्राप्त नहीं किया था।

'विचित्र हैं ब्रह्मचारीजी।' प्रथमको आश्चर्य था। वे अद्वैत-चर्चामें 'सोऽहं' कह उठते हैं विभोर होकर और द्वैत-चर्चामें अश्रु बहाते हुए 'दासोऽहं' भी। भगवान विष्णुके गुणगानमें 'हरिबोल', श्रीराम चर्चामें 'जय जय सीताराम' और भोले बाबाका गुणगान होते समय 'हर हर महादेव' इस प्रकार पुकार उठते हैं, जैसे वे भावावेशमें आ गये हों।

'संकीर्णता तथा भेद-बुद्धि अज्ञानकी सूचक है।' दूसरेने, जो पुराना सत्संगी था, अपने साथीको समझाया। 'साधकमें निष्ठा होती है और यही निष्ठा यदि श्रद्धा एवं उद्योग न हो तो संकीर्ण हठवादिता बन जाती है। सच्चे श्रद्धालु साधकको तो अपने पथसे भिन्न दृष्टि डालनेका अवकाश ही नहीं होता। महापुरुष सत्यके साक्षी होते हैं। वे जानते हैं कि आराध्यके रूप श्रद्धा एवं अधिकार-भेदसे भिन्न हैं और सिद्धान्त-भेद केवल साधनोंकी दृढ़ता प्रति-

पादित करनेके लिए हैं। वे इस अनैक्यमें ऐक्यका साक्षात् बड़ी सरलतासे कर लेते हैं और इसीसे उन्हें सबमें समान आनन्दानुभव उपलब्ध होता है।'

× × ×

'कितना आनन्द है आज त्रिवेणी तटपर।'

'सार्थक है त्रिवेणी नाम। गंगा, यमुना और दोनोंकी सम्मिलित धारा। तीनों प्रवाह जैसे तीन वेणियाँ ही हैं इस संगम स्थानकी।'

'साधु समाजका यह वैभव, अपार जन-समुदायका यह श्रद्धा महोत्सव, यह गगन-भेदी जय-घोष। कहाँ विश्वमें यह सात्विक आनन्द प्राप्य है। वहाँ तो यदि कुछ हासोल्लास है भी तो वह हिंसा, द्वेष, अमर्ष, प्रतिस्पर्धा या आशंकासे कलुषित।'

कुम्भके महा पर्वपर मार्गके दोनों ओर अपार जनठट्ट लगा था। सहस्र-सहस्र नेत्र मार्गमें चलते साधुवृन्दके श्रद्धापूर्वक दर्शन कर रहे थे। मध्यमें बार-बार तुमुल जयघोष उठता था। कभी-कभी पुष्प-गुच्छ भी हाथियोंके हौदों तक भीड़में-से उछल आते थे। बार-बार भीड़ कुसुम-वर्षण करती थी।

रेशमी कामदार झूलोंपर रजत हौदे कसे थे। स्वर्ण छत्र चमचमा रहा था। चँवर चल रहे थे। आगे-आगे ध्वजा चलती थी और पीछे स्थानके सन्तोंकी भीड़। इस प्रकार एकके पश्चात दूसरे आचार्य या स्थानाधीशोंका

जुलूस मार्गसे जा रहा था। गैरिक, श्वेताम्बरधारी, दिगम्बर, बड़ी-बड़ी जटाओंवाले, पूर्णांगमें भस्म लगाये लौह-जञ्जीर-काष्ठ या मौंजी मेखला पहने कौपीनधारी, अनेक प्रकारके साधुओंका समुदाय चला जा रहा था।

एकके पश्चात एक अखाड़े गये। उन्होंने ऐतिहासिक क्रमसे स्नान किया और लौट गये। उनके स्नान करते-करते तीन बज गये। बूँदा-बाँदी हुई नहीं और हल्के बादलोंके घिरे रहनेसे आतप भी नहीं था। यों माघमें धूप होती भी तो जनताको कोई कष्ट नहीं होना था।

'अब हम लोगोंकी बारी है।' साधुओंके स्नानके अनन्तर जनता उमड़ पड़ी थी संगमपर। किनारे नावोंका घेरा बना दिया गया था मेला-प्रबन्धकोंकी ओरसे। दूर तक गंगा-यमुनाका जल नावोंसे ढक-सा गया था। प्रबन्ध अत्यन्त व्यवस्थित होनेपर भी दो नावें टकराकर डूब गयीं। यात्री अवश्य बचा लिये गये। किनारे स्वयं-सेवकोंकी पंक्ति खड़ी थी, किनारेसे कटिपर्यन्त जल तक। कीचड़ हो गया था तीरपर ऊपर दूर तक स्नान करने वालोंके भीगे वस्त्रोंके टपकते जलसे। काली चिकनी मिट्टी-पर फिसलन हो गयी थी। लोग फिसलते और गिरते भी थे ही।

एक बार साथ छूट जाय तो फिर पाना शक्य नहीं था। कपड़े किसी पण्डेके तखतपर रख दें तो फिर वहाँ तक पहुँचना सरल नहीं है। कोई उसे लेकर रफूचक्कर हो जाय तो कोई उसे पूछने वाला भी नहीं। अतः हाथ पकड़ कर दोनों बड़ी कठिनतासे घुसे भीड़में। कटि पर्यन्त

जलमें खड़े होकर एकने दूसरेको कपड़े देकर डुबकी लगायी और निकल आये। धोतियाँ यों ही निचोड़ ली गयीं। उन्हें कौन भीड़में घुसे धोनेके लिये। यह कार्य डेरेपर सरलतासे हो जायगा।

'शास्त्र कहते हैं, मान भी लेता हूँ कि यहाँ डुबकी लगानेसे जीवका मङ्गल होता है। उसके पाप नष्ट हो जाते हैं और पारलौकिक कल्याण प्राप्त करता है वह।' एक कह रहा था दूसरेसे। 'लेकिन भीड़में इतनी धक्कम-धुक्की, इतना कीचड़ हुआ जल। स्नान करके निकलने पर कीचड़में घुटने तक भर गये। कपड़े खराब हो गये। धक्का खाते-खाते पसीना आ गया। क्या आनन्द है इस स्नानसे ? शरीर तो कह रहा है कि डेरेपर पहुँचकर पुनः स्नान करना होगा। सिरमें रेत भर गयी गंदले जलकी और कपड़े भी उसीमें भर गये।'

'सच पूछते हो ?' दूसरेने भी विरक्ति प्रदर्शित की। 'इस युगमें तीर्थ-स्नानसे पारलौकिक कल्याणकी भी वही दशा हो गयी है, जो स्नानसे स्वच्छताके सम्बन्धमें शरीर-की हुई है।'

'यह क्या कह रहे हो तुम ?' पहिलेको लगा कि उसका साथी नास्तिक होता जा रहा है। तीर्थोंमें उसकी श्रद्धा नहीं रही।

'मैं कुछ नहीं कहता।' दूसरेने उसी धीरतासे कह दिया। कह तो रहे हैं यह भगवान व्यास—

'अत्युग्र भूरिकर्माणो नास्तिका रौरोरवाः जनाः।
तेऽपि तिष्ठन्ति तीर्थेषु तीर्थं सारस्ततो गताः॥'

× × ×

'चलो अब झूसी चलें !' भोजनादिसे निवृत्त हो चुके थे वे और झूसी जाना हो तो दो बजे पहुँच जाना चाहिये ।

'सभी धार्मिक सिद्धान्तोंका समन्वय एवं पृथक-पृथक विवेचन, जैसा वहाँ होता है और किसी पण्डालमें पाना कठिन है ।'

'ऐसा तो नहीं है । सन्त समाजमें सभी कहीं संकीर्णताका अभाव होता है । अधिकारीके अनुरूप ही वहाँके उपदेश होते हैं ।'

'कथा-वाचकोंकी अद्भुत शैलियाँ, विविध युक्तियाँ और विचित्र-विचित्र अर्थ, एक बार तो हृदय आनन्द-विभोर हो उठता है ।'

'हमें नावसे चलना चाहिये । किनारे-किनारे चलनेसे बहुत धक्के खाने पड़ेंगे और चक्कर भी अधिक पड़ेगा ।' मेला देखनेकी प्रवृत्ति नहीं थी दोमें-से किसीमें ।

'प्रत्येक प्रकारका साधक अपने अनुरूप साधन प्राप्त ही कर लेता है वहाँ । प्राय: सभीके आराध्योंका गुण-गान होता है । सभी किसी-न-किसी प्रवक्ता द्वारा भावमग्न कर दिये जाते हैं ।

'सन्त समाजमें यह विष्णु और शिवका विभेद नहीं रहता । वहाँ दोनोंके गुण-गानकी गंगा-यमुना मिलकर बहती हैं त्रिवेणी बनाते हुए ।'

'न वहाँ धक्कम-धुक्की होती और न हल्ला-गुल्ला । एकको कलका त्रिवेणी-स्नान स्मरण हो आया । 'न

कीचड़में फिसलनेका भय होता और न नाव टकराकर डूबनेका ही। गन्दे मटमैले जलसे काम नहीं पड़ता। कपड़े न गन्दे होते और न उनके चुराये जानेका ही भय है। साथियोंसे वहाँ वियुक्त भी नहीं होता कोई।'

'सीधे क्यों नहीं कहते कि वहाँ स्नानकी खटपट ही नहीं।' दूसरेने तनिक हँसते हुए कहा, 'यह त्रिवेणी स्थूल शरीरके बाह्यको प्रक्षालित नहीं करती। कर्ण-मार्गसे सीधे अन्तरमें पहुँचती है और हृदयको स्नात कर देती है।'

'शान्ति, आनन्द, मनोरञ्जन, सभी प्रकारसे वहाँ सुख प्राप्त होता है। अशान्ति एवं आकुलताके लिए जैसे वहाँ स्थान ही नहीं।'

'केवल सुख ही नहीं' दूसरेने और मग्नता प्रगट की, 'वहाँ जीवको सब प्रकारका कल्याण भी प्राप्त होता है। तीर्थोंमें जो महापापियोंके आनेसे सारहीनता आ गयी है, वह सन्त-समाजको स्पर्श भी नहीं कर सकती। क्योंकि नितान्त विषयोन्मुख वहाँ जाते ही नहीं और यदि भूले-भटके पहुँच भी जायँ तो कम-से-कम जब तक वहाँ रहते हैं, उनकी वृत्ति सत्वोन्मुख होती है। वे ही प्रभावित होते हैं वहाँ। अपना प्रभाव डाल नहीं पाते।'

मृदङ्गकी धमक सुनायी पड़ने लगी थी। विशाल द्वार-पर लगी पताकाएँ वायुमें उड़कर आह्वान कर रही थीं। अब बातचीतको स्वतः बन्द हो जाना था।

—+—

अक्षयबट

बट बिस्वास अचल निज धरमा।
तीरथराज समाज सुकरमा॥

'मैं नहीं मानता कि संकट, लोभ और चमत्कार आपके किसी भी साधुको डिगा नहीं सकते।' सूफी फकीर शमशुद्दीन आज बाबा रामचरणदासकी कुटियापर पधारे थे। प्राय: दोनों सन्त एक दूसरेके यहाँ अवकाश पानेपर आते-जाते थे। आज उनमें विश्वासके सम्बन्धमें चर्चा थी।

'सन्त समाजमें नैष्ठिकोंके लिए ही स्थान है।' बाबाजीने उत्तर दिया। 'वह निष्ठा ही क्या जो डिग जाय।'

'मैं कबूल करता हूँ।' सूफीजी कह रहे थे। 'लेकिन घोर शारीरिक या मानसिक कष्ट, अपार सम्पत्ति तथा सम्मान, सिद्धियोंके चमत्कार, ये जिसे लोभमें न डालें, ऐसे बहुत कम ही हो सकते हैं। फिर वे सबके सब सन्त समाजमें कैसे हो सकते हैं?'

'मैं विवाद करना नहीं चाहता।' बाबाजीने दृढ़ता प्रकट की 'लेकिन है यह सूर्यकी भाँति देदीप्यमान सत्य कि संकटोंके महासागर क्षुब्ध होकर भी किसी सन्तको कम्पित नहीं कर पाते। ऐश्वर्य, सम्मान, सिद्धि या कोई पारलौकिक प्रलोभन उसे आर्द्र नहीं करता। प्रलोभनोंकी लहरें उससे टकराकर चूर्ण, विचूर्ण हो जाती

हैं और उनके महाविक्षुब्ध महोदधिमें भी उसका विश्वास अक्षय बटकी भाँति सुस्थिर मस्तक उठाये रहता है।'

'आप बुरा तो न मानेंगे' सूफीजी मुस्कराये। 'मैं इम्तहान लेना चाहता हूँ। आप जिसे सबसे बड़ा विश्वासी समझते हों, उसीका इम्तहान लूँ।'

'शायद मेरा ही।' बाबाजी खुलकर हँस पड़े। 'मैं बुरा क्यों मानूँगा। लेकिन परीक्षा लेनी चाहिये सबसे दुर्बलकी। सबलकी परीक्षा करके फिर दूसरेकी परीक्षा ली नहीं जा सकेगी। दूसरे सावधान हो जायँगे।'

'आप जैसा ठीक समझें।' सूफीजीको सफलतामें कोई सन्देह नहीं था। 'आप ही जानते हैं कि आपके यहाँ कौन सबसे कमजोर और कौन मजबूत है।'

'यह लक्ष्मणदास है न?' बाबाजी ने एक नवीन साधुकी चर्चा की। 'न पढ़ा लिखा है और न साधन-भजन ही करता है। दिन भर गायोंकी सेवा, बर्तन मलना और दण्ड-बैठकसे छुट्टी नहीं उसे। घरपर सम्पन्न था। यहाँ परिश्रम ही सिर पड़ा है। भोजन भी सेर सवा-सेर है उसका और साधु उसे झिड़कते भी रहते हैं। सबसे छोटा जो है। पीछे दीक्षा जो ली है उसने।'

'आप एक शिष्य खो रहे हैं!' हँसे सूफीजी।

'लक्ष्मणदास!' बाबाजीने पुकारा और एक पहलवान साधु सम्मुख आ खड़ा हुआ हाथ जोड़े। 'तुम्हें एक महीने सूफीजीकी कुटियापर रहना है।' आज्ञा दे दी गयी उसे।

× × ×

'तुम महलोंमें रह सकोगे। पाँच हजार सिपाही तुम्हारे हुक्ममें रहेंगे। यहाँ तुम्हें पेटभर रोटी भी नहीं मिलती।' लक्ष्मणदाससे छिपा नहीं था कि नवाब सूफी साहबकी किसी आज्ञाको टाल नहीं सकते।

'मुझे किसी तरह एक महीना पूरा करना है।' गुरु-आज्ञाका पालन करना ही पड़ेगा उसे। 'फिर तो मैं मजेसे गुरुजीकी सुरभीका दूध पीऊँगा और दण्ड पेलूँगा।'

'अब यह ख्वाब देखना छोड़ दो।' सूफीजी हँस रहे थे। 'मैं बाबाजीसे तुमको हमेशाके लिए माँग लूँगा।' सचमुच यदि इन्होंने कहा तो बाबाजी अस्वीकार तो नहीं कर सकेंगे।

'मुझे क्या, दो टिक्कर तो यहाँ भी ठोंक ही लेता हूँ।' लक्ष्मणदास तनिक उदास हो गये थे।

'अच्छा नगर चलो मेरे साथ।' सूफीजी सीधे काजीके यहाँ जाकर ठहरे शामको।

'देखो, तुम्हें मेरा कहना तो मानना ही होगा।' सूफीजीकी आँखोंमें बल बड़ गये थे। लक्ष्मणदास जंजीरों-से बँधे दूसरे सबेरे मैदानमें पड़े थे और एक छोटे पहाड़ जैसा हाथी थोड़ी दूर खड़ा था। महावत प्रतीक्षा कर रहा था काजीके संकेतकी। इशारा हुआ, हाथी बढ़ा और उसके पैरोंके नीचे मानव शरीरका माँस लोथड़ा पिच्से हो जायगा। 'मेरा चेला बननेमें क्यों एतराज है तुम्हें। इस तरह क्यों मरनेपर उतारू हुए हो ?'

'आप अपना काम करें!' लक्ष्मणदास उस मानसिक स्थितिमें पहुँच गये थे, जहाँ भय और क्रोधका प्रवेश नहीं। आसन्न मृत्युने उन्हें सहसा अनपेक्ष बना दिया था। 'मैं अपने धर्मको सहस्रों जीवनोंसे श्रेष्ठ समझता हूँ।'

रात्रि भर सुकुमार चपल सौंदर्यके मध्यमें भी वह अनपढ़ साधु बचा रहा था। तीव्र स्वरसे 'राम राम राम' का जप करता रहा वह रात्रि भर। इस रक्षाकवचके ऊपर सुन्दरियोंके हाव-भाव-कटाक्षके सारे अस्त्र-शस्त्र भोथरे हो गये। मदनकी सेना परास्त हो चुकी थी। ऐश्वर्यके प्रलोभन निरर्थक सिद्ध हुए थे प्रथम ही। यह भय उपस्थित किया गया था अब।

संकेत हुआ। महावतने हाथीको अंकुश दिया और वह काला पहाड़ झूमता हुआ आगे बढ़ा। 'श्रीबजरंगबलीकी जय!' साधुने सम्पूर्ण शक्ति लगाकर जयनाद किया। सहसा हाथीने सूँड़ उठाकर सलामी दी और मुड़कर भाग खड़ा हुआ। महावतने अंकुश मार-मारकर मस्तक छलनी कर दिया, किन्तु नहीं रुका, नहीं रुका वह गजराज।

'तो तुम चमत्कार भी दिखा सकते हो।' सूफीजी हँसते हुए जंजीरें खोल रहे थे अपने हाथों। पता नहीं हाथीको साधुके जयनादने भगाया था या सूफीजीका ही कोई चमत्कार था यह।

'श्रीहनुमानजीकी दया है।' साधुको अहंकारने स्पर्श तक नहीं किया। 'मैं क्या जानूँ चमत्कार। यह तो आप

महापुरुषोंकी कृपा है। आप ही डरा रहे थे और आपने ही भगा दिया हाथीको।'

'अच्छा! अब चलो यहाँसे!' सूफीजीने काजीसे विदा लेनेकी भी आवश्यकता नहीं समझी। काजी जानता था उनके स्वभावको। उसने आगे बढ़कर फकीरकी कदमबोसी की। साधुको तो जैसे आत्मदान मिला। वह इस चहल-पहल, कोलाहल भरे नगरकी किचकिचमें एक क्षण नहीं रहना चाहता था।

'मैं तुम्हें अभी अच्छा कर दूँगा।' मार्गमें ही तीव्र ज्वर आ गया लक्ष्मणदासको। 'महज कलमा सुनानेकी देर है।'

'मैं अपना प्रारब्ध भोग लेना पसन्द करता हूँ।' जिस कानमें गुरुदेवने परम-पावन मंत्र दिया है, उसीमें एक विधर्मीको कलमा पढ़ने देगा वह? शरीर फटा जा रहा था। हड्डी-हड्डी जैसे हथौड़ोंसे कूटी जा रही हो। भेजा खोपड़ीसे निकलनेको तैयार था। दृढ़ रहा वह फिर भी।

'तुम शक करते हो?' सूफीजीने उसकी ओर देखा और फिर कुछ भुनभुनाये मन ही मन। सामने एक सूखा पेड़ था, फूँक मारा उस पेड़पर उन्होंने। छाल भी नहीं रही थी जिस ठूँठमें, उसमें कोंपलें निकल आयीं। लाल-लाल कोंपलोंसे ढकता जाता था वह।' यह और ऐसी अनेक सिद्धियाँ दे सकता हूँ मैं तुम्हें।'

'मैं अविश्वास नहीं करता।' अन्ततः लक्ष्मणदास साधु थे और एक महापुरुषके श्रीचरणोंकी उनपर कृपा

थी। आश्चर्य या कुतूहलका कोई चिह्न प्रकट नहीं किया उन्होंने। 'लेकिन मुझे बाजीगर बनना तनिक भी प्रिय नहीं और अपनी पीड़ाके लिए मैं प्रभुको या किसी महापुरुषको कष्ट नहीं दूँगा।'

सूफीजीने उल्लाससे साधुको दोनों हाथोंमें भर लिया। ज्वर और पीड़ा पता नहीं क्या हुई। अपने गुरुदेवके सहचरके चरण छूनेको साधु झुका अवश्य, किन्तु कर न सका। सूफीजी उसे हृदयसे लगाये अश्रु गिरा रहे थे।

× × ×

'मैं समझता था, साधुको एकाकी ही रहना चाहिये।' सूफीजी आज बाबा रामचरणदासके समीप श्रद्धावनत आये थे। 'यदि ऐसे अविचल अनुरागियोंका साथ हो, ऐसे विश्वासी मिलें, तुच्छ है एकान्त। इन श्रद्धालुओंके संग रहना ही किस साधनसे कम है।' आज अपनी एकान्त-प्रियताका गर्व दूर हो चुका था।

'रहना तो अकेले ही चाहिये सन्तको।' बाबाने प्रतिवाद किया। 'किन्तु यदि मन एकान्तमें न रहे, इधर-उधरकी व्यर्थ बातें सोचता रहे तो उसे एकान्त कैसे कहा जायगा? सच्चा एकान्त तो मनका ही है। शरीरका तो गौण है।'

'मन इधर-उधरकी न सोचे, तो फिर समाधि ही न लगी रहे।' सूफीजी गम्भीर हो चुके थे।' मैं यह जानता हूँ कि संगका प्रभाव जितना प्रभाव डालता है, साधन उतने शीघ्र एवं सफल प्रभाव नहीं पैदा कर पाते।'

'खरबूजेको देखकर खरबूजा रंग बदलता है।' बाबाजी हँसे। 'तो अब आप अपनी जंगलकी कुटिया छोड़नेकी सोचने लगे हैं ?' व्यंग तो नहीं कहना चाहिये, विनोद ही मात्र था यह।

'मैं अर्ज करने वाला था खुद ही।' सूफीजीकी गम्भीरतापर कोई असर नहीं पड़ा। 'आपको अगर तकलीफ न हो, मैं यहाँ पास उस पीपलके नीचे झोपड़ी डलवा लूँ अपने लिए। मेरी वजहसे सन्तोंको कोई तकलीफ नहीं होगी।'

'यह एक रही !' बाबाजी खुलकर हँसनेके अभ्यासी हैं। 'भला साधुका क्या समाज। हमारे समाज तो सत्कर्म ही हैं और आप जैसे साधन, सद्भाव हमें प्राप्त हों तो भला हम कहीं छोड़ सकते हैं। आपके आश्रमके गृह-प्रवेश-का भण्डारा कब मिलेगा सन्तोंको ?'

'मैं तो कुछ पाने आ रहा हूँ।' फकीरके नेत्र सजल हो रहे थे। 'सचमुच आपके पास ये पुण्यकर्म ही शकल लिये रहते हैं। इनके पास रहकर, इनके कदमोंकी धूलिसे मैं भी पाक हो जाऊँ, इसीलिए ···।'

'लेकिन आप तो इस साल हज करने जानेकी बात कह रहे थे।' सूफीजीका केवल विचार ही नहीं था, बल्कि वे एक महीने पहिलेसे तैयारी भी कर रहे थे मक्का जानेकी। उन्होंने काजीसे कह दिया था और जहाजमें उनके लिए जगह रखनेका इन्तजाम हो गया था। उन्हें तीन दिन बाद ही रवाना हो जाना चाहिये यहाँसे; क्योंकि तभी और लोग भी जायँगे।

'वह ख्याल छोड़ दिया मैंने।' फकीर मुसकरा उठे। 'मैंने सोचा कि जब मक्का शरीफमें चन्द दिन ही रह सकता हूँ, वहाँसे लौटना ही है तो वहाँ जाऊँ ही क्यों ? क्यों न आपके प्रयागराजमें हमेशाके लिए बस जाऊँ।'

'तो आप कब प्रयाग जा रहे हैं ?' बाबाजीने पूछा। उन्हें आश्चर्य था कि इस मुसलमान फकीरको यह सूझी क्या है और जब वह सदाके लिए प्रयाग जा रहा है तो फिर पीपलके नीचे कुटिया बनानेकी बात करता ही क्यों है।

'अरे, सो कुछ नहीं।' फकीर हँसते जा रहे थे। 'जहाँ अडिग विश्वासका अक्षयबट रहता है, जहाँ शकलोंमें सब पुण्य रहते हैं, मैं वहीं रहूँगा। मेरा प्रयाग तो यहाँ है।' उन्होंने ही भूमिपर सिर रख दिया।

बाबाजीकी झोंपड़ियाँ तो कालके थपेड़ोंमें उड़ गयीं; किन्तु वह पीपल और उसके नीचे सूफीजीकी पक्की कुटीका खण्डहर अभी है, फैजाबादकी ओर अयोध्यासे हटकर सरयू किनारे।

सुलभतम

सबहिं सुलभ सब दिन सब देसा ।
सेवत सादर समन कलेसा ।।

'यह प्रयाग जाना चाहता है' उस स्त्रीने श्रीएकनाथजी महाराजके चरणोंमें मस्तक रखा । 'यह कुबड़ा, जो मेरी सहायताके बिना खाटसे उठ भी नहीं पाता और मेरे दो छोटे बच्चे हैं । मैं उन्हें किसपर छोड़ जाऊँ ? कौन पालन करेगा उनका ?' वह रो रही थी । हिचकियाँ बँध गयी थीं उसकी ।

उस स्त्रीका पति एक लाठीके सहारे दूर खड़ा था कमर झुकाये । उसके नेत्रोंमें जल था और थी अपार श्रद्धा । वह अपनी स्त्रीकी भाँति धृष्ट नहीं था, जो भक्त मण्डलीको चीरती महाराज तक चली गयी थी । उसने सबके पीछे बड़े कष्टसे बैठकर पृथ्वीपर सिर रखा था और फिर किसी प्रकार लाठीपर बल देकर खड़ा हो गया था।

उसे कूबड़ है । सीधा खड़े होनेमें असमर्थ है । पैरके घुटनों और कमरमें गठियाका भयङ्कर दर्द है । प्रातः जब स्त्री उसकी कमर और पैर कुछ देर तक दबाती है, तब कहीं घण्टे, डेढ़ घण्टे दिन चढ़े किसी प्रकार उठ पाता है । स्त्री जितनी ही वाणीकी तेज है, उतनी ही सेवा-परायण भी । हृदय स्वच्छ है उसका । जो मुँहमें आवे,

बड़बड़ाती रहती है; किन्तु यदि किसी दिन दर्द बढ़ जाय, वह चीखने लगे, दिन-रात एक कर देती है। गाँवके सारे वैद्यों, वृद्धोंके घर दौड़ आती है। कभी तेल मलती है, कभी सेंकती है और जब कुछ वश नहीं चलता तो उसके पैरोंपर सिर रखकर फूट-फूटकर रोती है। वह समझाती है और उस समय भी खरी-खोटी सुनानेसे बाज नहीं आती। 'तूने ही तो दही खा ली, तूने मना करनेपर चोरीसे मूली खायी होगी। जरूर कुछ खाया होगा। बड़ा चटोरा है तू। तू मुझे मार डालेगा।' वह रोती भी जाती है। पतिकी शपथोंपर उसे विश्वास नहीं।

कुरमी है वह। थोड़ी-सी जमीन है। किसी-न-किसी मजदूरको लेकर स्त्री खेतोंमें लगी रहती है। मूली, गोभी, कुम्हड़े, लौकी, कोई-न-कोई शाक-भाजी उसके खेतोंमें बारहों महीने मिल जाती है। पतिके बदनकी मालिश करके, चौका बरतन, रसोई, बच्चोंकी देख-भाल और पतिको स्नानादि कराके भी वह खेतोंके लिए समय निकाल लेती है। मजदूरोंको डाँट फटकार आती है। वही एक ऐसी सब्जी वाली है जो शामको नगरमें सब्जी बेचने जाती है और चिराग जले लौटती है। बिक्रीके पैसे उसने कभी अपने पास नहीं रखे। आते ही पतिको गिना देती है। माँग लेती है उससे व्ययकी आवश्यकता पड़नेपर। हिसाब माँगना उसे नहीं आता, वैसे पतिके पास पैसे न होनेसे वह अस्वीकार करे माँगनेपर तो झगड़ भी लेती है। उसे चटोरा कहकर डाँट भी देती है। गाँवमें वह प्रसिद्ध झगड़ालू है। किसीने उसके खेतमें पैर

रखा, किसीकी गाय या बकरी बाड़के समीप पहुँची, आसमान सिरपर उठा लेगी।

'एक बार प्रयागजीमें गङ्गा-यमुनामें गोता लगा लूँ।' कुबड़ेको बहुत दिनोंसे धुन है। वह जब इसकी चर्चा करता है, पत्नी रोते-रोते आँखें लाल कर लेती है। खूब खरी-खोटी सुनाती है उसे। 'जीवन सफल हो जाय। फिर मर भी जाऊँ तो क्या हानि।' उसने धीरे-धीरे पचास रुपये एकत्र कर लिये हैं। अब वह रुक नहीं सकता। गाँवका लल्लू नाई जा रहा है। झम्मन कहार जा रहा है। अलगू पाँडे जा रहे हैं। वह उनके साथ अवश्य जायगा। उसने पत्नीको यहाँ तक कह दिया कि वह अपनी कमाईके रुपये न ले जाने देना चाहे तो ये पचास रुपये भी ले ले। वह माँगता खाता चला जायगा, लेकिन इस साल तो वह जाकर ही रहेगा।

'मर जायगा यह रोगी कुबड़ा उसकी सेवाके बिना। वह अपने छोटे बच्चों, खेत-बारीको छोड़कर कैसे जाय? कौन देखेगा यह सब? बच्चे बिलबिलायेंगे। खेत नष्ट हो जायगा।' जब कई दिन लगातार रोने और झगड़नेका भी पतिपर प्रभाव न हुआ तो किसी प्रकार समझा बुझाकर वह उसे एकनाथ महाराजके पास लायी है। 'महाराज समर्थ योगी हैं। उन्होंने गङ्गोत्रीसे रामेश्वरपर चढ़ानेके लिये लाये जानेवाले जलको प्यासे गधेको पिला दिया। वह दया करें तो इस कुबड़ेको किसी प्रकार रोक दें। कुछ समझा दें या उसकी बुद्धि बदल दें।'

× × ×

'वह पूरा हठी है ।' उसने अब मजदूर घटा दिये हैं। जी तोड़ श्रम करती है खेतमें।' उसे प्रयागके लिए रुपये चाहिये, कम-से-कम पचीस तो और चाहिये ही। 'तुम सबोंके लिए भी तो पचीस देना पड़ेगा भगेलूको। वह क्या तुम्हारा मुख देखकर पालेगा। रुपयेके लालचसे रख लेगा तो एक टुकड़ा दे ही दिया करेगा। मैं जाऊँगी उसके साथ, जरूर जाऊँगी। जीवनमें उसकी एक ही साध है तो उसे पूरी करके रहूँगी। अकेले भला कैसे जायगा वह।'

वह तो बदल गयी है एकदम। बच्चे एक मूली या गाजरको तरस जाते हैं। अब उनके लिए न वह खिलौने लाती और न मिठाई। बच्चे समझ नहीं पाते कि उनकी माँ इतनी चिड़चिड़ी क्यों हो गयी है। बात-बातपर पीट देती है। कंजूस हो गयी है परले सिरेकी। दिनमें एक-बार चूल्हा जलता है और कभी-कभी वह भी नहीं। बच्चे बासी रोटीके टुकड़ोंपर रह जाते हैं और वह केवल पानी पीकर।

आँखें गड्ढेमें घुस गयीं बीस दिनमें ही। सूखकर ठठरी हो गयी। अब शामके बदले सुबह जाती है शाक वेचने। बड़ा भारी टोकरा ले जाती है। एक-एक कौड़ीके लिए झगड़ती है। तौलसे ऊपर एक पत्ता देनेमें जैसे मर जाती है। सोनेकी तौल तौलने लगी है वह शाक भी। बहुत चक्कर काटना पड़ता है उसे। ऐसी शाक वालीसे

कोई शाक शीघ्र क्यों लेने लगा। इधर उसके मजदूर भी उससे कुढ़ने लगे हैं। वह बराबर फटकारती रहती है। चिलम भी पीने नहीं देना चाहती। खुद शैतानकी तरह जुटी रहती है। पुरुष-स्त्री उसके साथ काम करनेमें हार मान चुके हैं।

उसका कुबड़ा ? रात-दिन सोचा करती है वह पतिके विषयमें। 'पता नहीं क्या करता होगा। कौन सवेरे उसकी टाँग और कमर मलता होगा। कौन देता होगा उसे नहानेको गर्म जल। पता नहीं उसे भरपेट भोजन भी मिलता होगा या नहीं। बड़ा चटोरा है वह। बिना भाजीके रोटी नहीं उतरती उसके गलेसे नीचे। औरतसे भी ज्यादा लजीला है। मुझसे ही कुछ नहीं माँगता था तो वहाँ किससे माँगेगा। सोनेको खाट भी तो नहीं मिलती होगी उसे।' रातमें जब बच्चे सो जाते हैं, वह खाटपर पड़े-पड़े रोया करती है।

'पता नहीं उसे क्या सूझा था कि एकनाथ महाराजके पास ले गयी थी उसे। वह प्रयाग ही तो जाना चाहता है। कोई बुरा काम तो नहीं करना चाहता। उसीके बहाने गोता लगानेको मिल जायगा गङ्गाजीमें। ठीक ही तो कहता है वह--जीवनका क्या ठिकाना। उसकी एक लालसाको भी पूरी नहीं कर सकती वह। व्यर्थ है उसका पत्नी होना।' अपने दुःखका पार नहीं पाती वह आजकल।

'एकनाथ महाराजको भी पता नहीं क्या सूझी उस दिन। वे महात्मा हैं, साधु हैं। उन्हें चाहिये तो था कि समझा-बुझाकर पतिको तीर्थ भेजनेपर इसको राजी कर देते। उन्होंने तो कुबड़ेको अपने पास रख लिया। भला यह भी कोई आज्ञा है—एक मास तक यहाँ मत आना। उन्होंने सोचा होगा; कुबड़ा अच्छा मजदूर मिला। एक महीने तो बिना मजदूरी दिये रोटीपर काम करा लो। वह नहीं मानेगी इस आज्ञाको। पता नहीं उसके रोगी पतिको वहाँ क्या-क्या करना पड़ता होगा। कितना कष्ट होगा उसे। वह देख आये तो क्या हानि ?' नित्य वह जानेका संकल्प करती है। जा नहीं पाती। 'कहीं पतिका कोई अकल्याण न हो।'

'वह क्या करता है ! कैसे रहता है ! बहुत दुबला हो गया होगा। क्या महाराज उससे बहुत काम लेते हैं ? उसे भरपेट भोजन मिलता भी है या नहीं ?' वह पता लगाती रहती है कि गाँवसे कौन कब पाटण जा रहा है। जानेसे पहिले वह खूब समझा देती है कि दया करके उसके पतिका समाचार वह अवश्य लावे। जाने वालेके घर एक टोकरा बैंगन या सेम पहुँचा आती है। उमड़ पड़ती है उसकी उदारता। महाराजके लिए छाँट-छाँटकर फूल गोभीके फूल भेजती है और प्रार्थना करनेको बार-बार सचेत करती है जाने वालेको कि महाराज उसके कुबड़े पतिपर दया रखें। ध्यान रखें उसका। बड़ा शरमीला है उसका पति।

'वह कहता ही नहीं। कष्ट तो उसे होगा ही। प्रत्येक लौटने वालेसे सन्देश-समाचार सुनने जाती है। उसे कभी इस बातपर विश्वास नहीं होता कि उसका पति बहुत प्रसन्न है। महाराजकी उसपर बड़ी कृपा है। मोटा हो गया है वह पहिलेसे। उसे लगता है कि यात्री उसका उपहास करते हैं या उसका पति उसे बहलानेके लिए अथवा सङ्कोचवश झूठे समाचार भेजता है।

× × ×

'अब तू प्रयाग चला जाने दे इसे!' आज एक महीना पूरा होनेपर गोभी-मटरका बड़ा-सा टोकरा लिये श्रीएकनाथ महाराजके चरणोंमें आयी थी। महाराजकी अपेक्षा पति-दर्शनकी हो अधिक लालसा थी उसमें। टोकरा सामने रखकर महापुरुषके सामने पृथ्वीपर सिर रखा उसने। महाराजने पास खड़े उसके पतिकी ओर देखकर हँसते हुए कहा।

'मैं भी तो जाऊँगी प्रभु!' कहनेको तो कह दिया, किन्तु पतिकी ओर दृष्टि पड़ते ही हक्की-बक्की हो गयी। उसका कुबड़ा पति सीधे खड़ा है। कूबड़का पता नहीं और बड़ा स्वस्थ प्रसन्न लगता है वह। वह मूर्तिकी भाँति गुम-सुम देखती रही। नेत्रोंके प्रवाह ही कहते थे कि वह आनन्दके आवेगमें मरी नहीं—जीवित है अभी।

'अब तो प्रयाग ही मेरे घर जावेगा!' उसके पतिने महापुरुषके चरणोंपर मस्तक रखा और तब उसने भी

अपनेको सम्भालकर फिर सिर टेका पृथ्वीपर पतिके साथ ही ।

'अच्छा तो है, अब तुम दोनों तीर्थ कर आओ !' महाराजने हँसते हुए आदेश किया।

'मेरा प्रयाग तो यहाँ है।' पुरुषने दोनों पैर पकड़े सन्तके। 'जो सब समय और सब कहीं प्रत्येक व्यक्तिको प्राप्त हो सकते हैं। मैं अब इन्हें लेजाकर एक वार अपने घरको पवित्र किये बिना नहीं मानता।' बड़ा श्रद्धा भरा था यह निमन्त्रण।

'महाराज अपने घर पधारेंगे।' वह जैसे आनन्दसे पागल हो जायगी। बिना यह देखे कि वहाँ एक भीड़में खड़ी है वह, पतिके कानके पास मुँह ले जाकर फुस-फुसाने लगी 'तुम्हारे पचास रुपये मैंने सम्हाल रखे हैं और एक महीनेमें पचास और एकत्र कर लिये हैं। सङ्कोच मत करो महाराजसे आग्रह करनेमें !'

'तुमने जिस परिश्रम और आदरसे पूरे महीने भर मेरी सेवाकी है' सन्त गम्भीरतासे कह रहे थे 'उसका पुरस्कार देना मेरी शक्तिके बाहर है। मैं तुम्हारा अनुरोध टाल नहीं सकता। तुम्हारी पत्नी ही बतावेगी कि मैं कब उसके द्वारपर पहुँचूँ।'

जी चाहता था कि कह दे वह 'महाराज, चले ही चलें अभी साथ !' लेकिन वह मूर्ख नहीं। महाराजका क्या, अभी उठकर चल देंगे। क्या करेगी वह ! गेहूँ पीसना होगा, घी मँगाना होगा और आस-पासके

गाँवमें निमन्त्रण देना होगा। वह बड़ी धूमधामसे महाराजका स्वागत करेगी। 'एकादशी प्रभु वहीं करें और द्वादशीको जूठनसे कृतार्थ करें हमें !' चतुरता पूर्वक दो दिनका निवास माँगा उसने।

कुबड़ा नाई पास खड़ा था वहीं। ईर्ष्यासे जला जा रहा था। 'यह कुबड़ा महीने भर सेवा करके कूबड़ और गठियासे छुटकारा पागया और महाराज उसके घर जाना स्वीकार कर चुके, किन्तु वह नित्य महाराजके पैर दबाकर भी अपने कूबरसे छुट्टी न पासका। कौन उसे बतावे कि सन्तोंकी सेवा आदर एवं श्रद्धासे करनेपर फल देती है। सारे क्लेशोंका नाश कर देती है। वह तो पैर दबाता है और इसलिए कि अन्न पाता है उसके बदले।

सद्य फलद

अकथ अलौकिक तीरथ राऊ।
देइ सद्यफल प्रगट प्रभाऊ॥

'यह कैसे हो सकता है। हम कोई रईस तो हैं नहीं जो तुम्हें किसी गाड़ीपर बैठा लेंगे या किसी टट्टूपर चढ़ा देंगे।' बहुत बार मनुष्य जो नहीं करना चाहता, वह भी उसे करना पड़ता है और जो करना चाहता है, उसे भी परिस्थिति नहीं करने देती।' तुम चल तो सकते नहीं हो और कोई अपने गाँवका रास्ता है जो घिसटते हुए चले चलोगे।'

मातादीनके हाथ-पैरोंपर बँधी पट्टियोंपर मक्खियाँ भिन भिना रही थीं। उसके गलित कुष्टके घावोंसे पीव निकल रही थी। उसकी ओर देखनेमें मिचली आती थी। कमरके चारों ओर मोटा टाट लपेटे रहता है वह। चल पाता नहीं, बैठे-बैठे ही किसी प्रकार घिसटता रहता है।

द्वारसे बाहर ही रुक गया था। भीतर आता तो पीटा नहीं जाता! कोढ़ीको कौन अपने द्वारपर चढ़ने देता है। घर वाले तो आने नहीं देते द्वारपर। गाँवसे बाहर एक झोंपड़ी डाल दी है लड़कोंने। वहीं पड़ा रहता है। उसके घड़ेमें एक बार पानी भर जाता है लल्लू और उसे

दोनों समय बड़ी लड़की कुछ रूखी रोटियाँ दे जाती है। उसके अल्मोनियमके बर्तन कभी मले नहीं जाते। कौन मले उन्हें। वही पानी डालकर गिरा देता है किसी प्रकार।

अपने गन्दे बिछौनेपर टूटी खाटपर पड़े-पड़े वह आम और कटहलकी रखवाली तो क्या करता है, लड़कोंको गाली अवश्य देता है। शरारती लड़के उसकी गालीपर ताली बजाते हैं, चिढ़ाते हैं और फल तोड़कर भाग जाते हैं। इन्हीं लड़कोंसे तो वह गाँव भरका समाचार पाता रहता है। लड़कोंसे एक-एक घरकी छोटी-मोटी बातोंकी जानकारी पानेमें पता नहीं कौन-सा रस पाता है वह।

एक दिन बच्चोंने बताया 'गाँवके बड़े ठाकुर प्रयाग जारहे हैं। उनके साथ कल्लन, घुरहू, पाँडे भी जायेंगे।' उसने सोचा 'वही क्यों पड़ा रहे यहाँ। माँगता खाता चला जायगा। यहाँ इस झोपड़ीमें सड़नेसे तो गङ्गा मैयाके किनारे पड़ा रहना कहीं अच्छा है। वहाँ सहस्रों यात्री आते होंगे। इस कोढ़ीपर दया करके वे कुछ-न-कुछ दे ही देंगे। पेटकी चिन्ता नहीं रहेगी। यहीं कौन हलवा पूड़ी उड़ाता है। पिछले जन्ममें पता नहीं कौन-सा पाप किया था, इस जन्ममें भोग रहा है। दान-पुण्य या कोई व्रत तो कर नहीं सकता। अब अगर तीर्थराजमें गङ्गा किनारे पड़ा मर जाय तो अगला जन्म तो सुधर जाय।' कई दिन सोचता रहा वह ऐसी ही बातें।

'ठाकुर दादा।' अन्ततः उसने कमरमें किसी प्रकार टाट लपेटा और घिसटता हुआ अपनी झोपड़ीसे चल पड़ा

गाँवकी ओर। लड़कोंने देखा तो घेर लिया दूरसे। उनके लिए कुतूहल हो गया। दूसरोंने भी पूछा आश्चर्यसे। वह कभी गाँवमें आता जो नहीं था।

चन्द्रशेखर सिंह बड़े दयालु हैं। दीन-दुःखियोंपर उनकी सदा कृपा रहती है। एक-दो भिखमंगे रोज ही शामको उनके दरवाजेपर टिक्कर ठोंकते हैं। साधु-महात्माओंमें बड़ी भक्ति है उनकी। हर पूर्णमासीको सत्यनारायणजीकी कथा सुनते हैं। भगवानने दिया है और एक ही लड़का है। वृद्धावस्थामें तीर्थ करनेका निश्चय उन्होंने ठीक ही किया था।

मातादीनकी पुकार सुनते ही तने ठाकुर उठकर बाहर आ खड़े हुए। उनका अनुमान था कि उसे किसीने सताया होगा या लड़के ठीक प्रकार भोजन न देते होंगे। उनके यहाँ गाँवके उत्पीड़ित प्राय: अपना कष्ट निवेदन करने आते हैं। सरपञ्च जो हैं वे गाँवके। उन्हें आश्चर्य हुआ जब अपने ठूँडे हाथसे मक्खियाँ उड़ाते हुए, पृथ्वीपर सिर टेककर गिड़गिड़ाते हुए कोढ़ीने प्रयाग जानेकी इच्छा प्रकट की।

'भोजनकी तो कोई बात नहीं।' ठाकुरका हृदय उसके रोनेपर द्रवित होगया था, लेकिन वे समझते थे कि ऐसा सम्भव कैसे है। 'लेकिन तुम चल भला कैसे सकते हो। मैं कैसे साथियोंको विवश करूँ कि वह तुम्हारे साथ कछुएकी चाल चलें और हम इसे भी मान लें तो भी तुम क्या इतनी दूर घिसक सकोगे? हम तुम्हारे लिए यहीं

गङ्गाजल ले आवेंगे ।' प्रेम पूर्वक समझाकर ही अस्वीकार किया उन्होंने ।

× × ×

'राम राम राम राम ।' साधुओंने देख लिया कि उस फूसकी कुटियासे ही निरन्तर नाम ध्वनि आरही है । दूरसे ध्वनि सुनायी पड़ रही थी । वे लोग चार पाँच मील चल चुके थे और अब आवश्यकता थी कहीं आसन लगानेकी । सूर्य मस्तकपर आ चुके थे । कहीं राजभोगकी सामग्री प्रस्तुत करनेमें भी तो घण्टे दो घण्टे लगेंगे । गाँवके ठाकुर बड़े साधु-सेवी हैं, यह वे सुन चुके थे और वहीं जा रहे थे । नाम ध्वनिसे उन्होंने समझा कि इस कुटियामें कोई सन्त रहते हैं । 'गृहस्थके द्वार ठहरनेसे साधुकी कुटीपर आसन रखना अधिक अच्छा है ।' वे कुटियाकी ओर मुड़ पड़े ।

उसे बड़ा दु:ख हुआ उस दिन । जीमें तो आया कि वह तीर्थराजके लिए चल दे । जो जीमें आवे वह सब काश मानव कर पाता ! कुटिया तक लौटते-लौटते ही हाँफ गया । आज वह कुष्ठ होनेके पश्चात पहिली बार उतनी दूर तक घिसट कर गया था । ठाकुरने ले जाना स्वीकार भी कर लिया होता तो क्या वह जा पाता ! 'ओह , उसकी जिन्दगी-- यह भी कोई जीना है ।' कुछ सोचता रहा रातभर और सबेरेसे उसने राम रामकी रट लगा दी । जोर-जोरसे चिल्ला रहा था वह ।

कौवे काँव-काँव करते उड़ गये। कोयलने कूक दी। दो-तीन गिलहरियाँ दौड़ आयीं सामनेकी डालपर यह देखने कि यह नये ढंगसे बोलने वाले उनके मित्र हैं या शत्रु। नीचे पत्ते खड़के और पतिंगे फर करके दूर जा उड़े। कुटियामें कोढ़ी चौंक उठा और हड़बड़ाकर टूटी चारपाईसे नीचे लुढ़क गया। उसके घावोंमें चोट लगी और उनसे रक्तिम पीव फच्चसे निकल आयी। फिर भी वह यथासम्भव शीघ्रतासे घिसकने लगा द्वारकी ओर।

'महाराज, दण्डवत्!' आवेशमें पृथ्वीपर सिर पटक दिया उसने। 'उसकी कुटियापर साधु आ रहे हैं! उसे हर्ष भी था और आश्चर्य भी। 'मैं महापापी हूँ। कोढ़ी हूँ। आपलोग तनिक दूर ही ठहरें!' उसने शीघ्र ही अपने आपको सम्भाल लिया और पूरे जोरसे चिल्लाया। समझ लिया था उसने कि किसी दुष्टने साधुओंके साथ हँसी की है। उन्हें धोखा देकर मेरे यहाँ भेजा है। उसकी कुटीके पास उसके ही पेड़ोंके फल चुराने वाले लड़के तक नहीं आते। वे भी दूरसे उससे बात करते हैं। यह कैसे सम्भव है कि सन्त जान-बूझकर वहाँ आ रहे होंगे।

'वह तो कोढ़ी है!' मंडलीमें सबसे अल्पवयस्क साधुके दोनों कन्धोंपर बड़े-बड़े झोले लटक रहे थे आगे-पीछे। हाथमें बड़ा सारा लोटा था और दूसरे हाथमें एक तुम्बा। आगे खिसक आया जल्दीसे वह। यों सबसे पीछे चल रहा था मण्डलीके। जो सबसे आगे थे, सबसे वयोवृद्ध थे, उनसे उसीने कहा।

'साधु क्या कोढ़ी नहीं हो सकता !' जिन नेत्रोंसे उन्होंने देखा उस कहनेवालेको, उसके सम्मुख सम्भव नहीं था आगे बोलना। वह चुपचाप पीछे खिसक गया। वृद्ध साधुके पैर स्वतः रुक गये थे चलते-चलते।

'यहाँ क्या श्रीरघुनाथजीका राजभोग होगा !' साहस करके उनके पीछे चलने वाले तरुण-साधुने पूछा। क्या होगा इस कोढ़ीके पास। यदि हो भी तो क्या उसके अन्नसे प्रसाद प्रस्तुत होगा ? छिः !' साधुका हृदय घृणासे भर गया था। 'सो तो उसकी श्रद्धापर निर्भर है !' वृद्ध जैसे घृणा एवं लौलित्यसे बहुत ऊपरसे बोल रहे थे। 'राम नामका इस लगनसे जप करने वाला यदि साधु न हो तो विश्वमें कोई साधु रहीं। तुम कह सकते हो कि जब श्रद्धासे प्रभुको प्रसादके लिए पुकारता होगा तो वे अस्वीकार कर देते होंगे तुम्हारी तरह ? न ग्रहण करना प्रसाद, पर क्या एक दिन पेटको कुछ न मिले तो जीवन न रहेगा ! क्या साधुको वहीं जाना चाहिये, जहाँ अच्छे-अच्छे पकवान मिलनेकी आशा हो !'

कोढ़ी पुकारता ही रह गया। उसने देखा कि उसके निषेधका कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा है। हँसते हुये वृद्ध साधु पूरी मण्डलीके साथ टीलेपर चढ़ आरहे हैं। वधिर तो नहीं हैं ये सब लोग !

× × ×

'यह गङ्गाजल पहिले दे आओ मातादीनको !' इतनी लम्बी यात्राके पश्चात् ठाकुर चन्द्रशेखर सिंहने बैठते ही पहिले पहिले उस कोढ़ीको स्मरण किया। पूरे मार्ग भर

वे उसे नहीं भूल सके। नहीं भूल सके उसके गिड़गिड़ानेको और उसके उदास घावोंसे भरे मुखको। प्रयागमें जंगमपर डुबकी लगाते समय उसके लिए वे दो डुबकी लगा आये हैं और यह गङ्गाजली विशेषत: उसके लिए ही आयी है।

'वह स्वयं आ गया !' सेवकने शीशी लेकर मुड़ते ही देखा कि मातादीन द्वारके सम्मुख चला आ रहा है। 'लो भाई अपना गङ्गाजल ! ठाकुर तुम्हारे लिए वहाँसे ले आये हैं !' प्रणाम करे वह ठाकुरको, इससे पहिले ही सेवकने शीशी आगे बढ़ा दी। प्रशंसाका कुछ अंश उसे भी तो पाना है।

'मातादीन तुम ?' ठाकुर चौंक पड़े। वे तो पहचान न सकते यदि सेवक इस प्रकार परिचय न देता। आगे बोलनेके लिए उनके पास शब्द नहीं थे। नीचेसे ऊपर तक बार-बार वे उसे देख रहे थे। जैसे आज कोई अद्‌भुत जीव आगया हो उनके सम्मुख। आश्चर्यकी बात थी ही। भला चंगा, हृष्ट-पुष्ट मातादीन नयी धोतीकी कछनी लगाये उनके सामने खड़ा था। वह चलकर आया था। उसके शरीरपर कोढ़ तो दूर रहा, एक चिह्न भी नहीं था किसी घावका। कौन कह सकता है कि उसे कभी गलित कुष्ठ भी हो चुका है।

कुष्ठ अच्छा हो सकता है ! असम्भव तो विश्वमें कुछ है नहीं। फिर भी यह कल्पना आप नहीं कर सकते कि जो अङ्ग गलकर नष्ट होगये हैं, वे पुनः पूर्ववत हो

जायँगे। मातादीनका कोई अङ्ग अधूरा नहीं था। कुष्ठने उसकी प्रायः सब अंगुलियाँ गला डाली थीं और अब ....

'जी, मैं—मैं अच्छा हो गया!' ठाकुरको प्रणाम करनेके अनन्तर उसने उनके आश्चर्यको दूर किया।' मैंने बहुतेरा मना किया, पर वे नहीं माने। ऊपर मेरी कुटियाके सामने आकर खड़े हो गये मेरे पास। इस अधमके शरीरसे निकलती दुर्गन्धिकी उन्होंने उपेक्षा कर दी और उपेक्षा कर दी इसके पीव भरे घावोंकी। मैंने पृथ्वीमें लेटकर प्रणाम किया उन्हें। और कर भी क्या सकता था? दोनों हाथोंसे झुककर उठा लिया उन दयामयने मुझे और चिपका लिया छातीसे। कोढ़ीको नहीं—कोढ़ तो इसी बीचमें पता नहीं क्या हो गया था।' किसी प्रकार रोते-रोते सुनाया उसने।

'सन्तोंकी महिमाका वर्णन कर कौन सकता है।' ठाकुरने उसे गले लगा लिया। 'हम तो केवल पृथ्वीके प्रयागमें स्नान कर आये और तुमने उस दिव्य प्रयागको अपने यहाँ बुला लिया अपनी श्रद्धासे जो तीर्थको भी तीर्थ करते हैं। जो त्रिलोकीको पवित्र करते हैं। जिनके दर्शनोंका फल तुरन्त प्रत्यक्ष हो जाता है। हमारी प्रयाग यात्रा सच पूछो तो तुम्हारे दर्शनसे पूर्ण हुई।' ठाकुरके नेत्र भी निर्झर बने थे।

इसी जन्ममें

सुनि समुझहिं जन मुदित मन,
मज्जहिं अति अनुराग।
लहहिं चारि फल अछत तनु,
साधु समाज प्रयाग ।।

'सवा रुपया गोदान त्रिवेणी माधवजीके लिए, सवा रुपये गङ्गाजीके लिए, सवा रुपये यमुनाजीके लिए, सवा रुपये सरस्वतीजीके लिए !' पंडाजीने संकल्पमें पता नहीं क्या-क्या पढ़ डाला था। 'ब्राह्मण भोजन जो तुम्हारी श्रद्धा हो और गोदानका संकल्प तो तुमने किया ही है। तीर्थमें संकल्प करके ब्राह्मणको न देनेका पाप तो तुम कर नहीं सकते।'

स्नान करने उतरनेसे पहिले मल्लाहोंने कहा—'यों ही स्नान करोगे ! गङ्गाजीमें कुछ डालकर स्नान करो !' आठ आने उसने फेंक दिये पानीमें। उसे अच्छा ही लगा था। यमुनाके अतल जलमें-से मल्लाह उसकी अठन्नी तीसरी डुबकीमें निकाल ही लाया। कईने डुबकी लगायी थी। उसने समझा 'आठ आनेमें तमाशा मंहगा नहीं रहा।'

'दूध चढ़ाओ दूध !' दूधवालेने दो तोले पानीके जिसमें दो चार दूधकी बूँदें रही होंगी, जब चार आने माँगे तो वह भौचक्का रह गया।

मालीने भी दो आने माँगे उस डलियाके जिसमें पाँच सात सड़े-गले कनैरके फूल थे और दो बेल पत्र। करता क्या, यहाँ तीर्थमें झगड़ा करने तो आया नहीं था। नाईने मुंडनके लिये अठन्नी एेंठ ली थी और पण्डाजी संकल्प कराके तटस्थसे हो रहे थे। गेरुआ वस्त्र पहिने एक भीड़ने घेर लिया। कुछ सफेद कपड़ेवाले भी थे और कुछ स्त्रियाँ भी थीं उनमें। एक दो नावें थीं। नावोंमें छोटी झोपड़ीके भीतर किसीमें बंशीधर बिराजे थे और किसीमें काली मैया। शंकरजीकी मूर्ति भी थी एकमें। तुलसीके गमले, गमलेमें बिल्वका पेड़ मूर्तियोंके साथमें भी थे। उन नौकाओंमें भी कोई पुजारी साधु बैठे थे। 'भोजन करा दे!' बहुत छोटी माँग थी सबकी। किसी प्रकार एक रूपयेके पैसे बाँटकर जान छुड़ाकर भगा था वहाँसे।

'दही खिला भक्त! यशोदा मैया दही खिला दे!' उसने कमर भर पानीमें खड़े उस साधुको जो मयूर-पंख लगाये था बालोंमें, चार आने दहीमें भेंट किये। उसे बताया गया कि ये सन्त केवल दही खाकर रहते हैं। जिस चौकीपर धोती रखकर स्नान किया था, उसके अधीश्वरने उसके मस्तकपर चन्दन लगा दिया। बड़े सन्तोषी निकले थे वृद्ध पंडा। एक पैसेमें ही सन्तोष कर लिया।

बड़ी भूल हुई। जानता होता तो कभी नावसे संगम-स्नान न करता। लोग घाटसे स्नान भी तो करते ही हैं। ... किसी प्रकार

हाथ जोड़कर, गिड़गिड़ाकर भी उसे ढाई रुपये तो देने ही पड़े।

'महाराज, मेरे पास तो इस लोटे और कम्बलको छोड़ कुछ बचा है नहीं।' वह जो कुछ भी संचय एवं कर्ज लेकर आया, यहाँकी लूटमें सब दे चुका। भगवान ही जानें कि बिना टिकट लौटनेमें क्या-क्या कष्ट भोगने होंगे उसे। जिस श्रद्धासे वह चला था घरसे, जिस आनन्दका अनुभव किया था उसने यहाँ पहुँचकर, पता नहीं क्या हुआ वह सब। अब तो सकुशल घर पहुँच जाय तो ......

'यों ही संकल्प करा दिया! आया है तीर्थ करने!' पंडाजी उबल पड़े। 'ब्राह्मणको इतना हैरान करके दक्षिणा भी नहीं देगा?'

'मैं दूँगा महाराज!' भला एक श्रद्धालु ग्रामीण कैसे सोच सकता है। 'यहाँ न दूँगा तो मुझे उस लोकमें देना होगा। घर जाकर आपकी दक्षिणा और संकल्पके रुपये भेज दूँगा।'

'कोई हर्ज नहीं!' पण्डाजीका स्वर नरम पड़ गया। वे सदासे यही व्यवसाय करते हैं। तीर्थमें संकल्प करके यात्री पण्डाका कर्ज अवश्य देगा, फिर चाहे घर बेचना हो या बैल बेचना हो या खेत। उससे कोई लिखा पढ़ी करानेकी आवश्यकता नहीं होती।' 'दक्षिणाका संकल्प कर दो और तुम्हें यदि आवश्यक हो तो मार्ग व्ययके लिए जितने चाहो ले जाओ?' इस प्रकार बहुत बार उधार देते हैं वे।

उसने उधार लेना आवश्यक एवं उचित नहीं समझा। पण्डाजीने दक्षिणाके लिए पूरे बीस रुपयेका संकल्प करा

लिया। उधार ही संकल्प कराना तो थोड़ा क्यों ?' ब्राह्मणको कुछ दे भी तो जाओ !' इतनेपर भी उनका संतोष न हुआ और इस कड़ाकेकी सर्दीमें भी उसका कंबल तथा लोटा एक प्रकारसे बलात् ले लिया उन्होंने।

× × ×

'बाबाजीने तो मङ्गलप्रसादके सिरपर जादूकी लकड़ी फेर दी है ?' एक नम्बरका मक्खीचूस यदि सहसा उदार हो जाय तो क्या कहा जायगा। लोग जानते हैं कि मङ्गल-प्रसादके द्वारपर कभी भिखमंगेको भीख नहीं मिलती थी, ग्रहणमें भी दो दाने दान नहीं करता था। पिताके श्राद्धमें एक ब्राह्मणको खिलाया था उसने, गाँवमें नास्तिक प्रसिद्ध था। न मन्दिर जाता था और न किसी कथा-कीर्तनमें। गाँव भरकी सम्मिलित कालीपूजामें उसीके घरसे चन्दा नहीं मिलता था गाँवमें।

उस दिन मठमें रामायण हो रही थी। श्री सिया-रघुबीरनाथजी के मन्दिरके महन्त किशोरीशरणजी कथा कह रहे थे। बड़ी सुन्दर व्याख्याकर रहे थे। छोटा भाई घर पर नहीं था। बड़ा आवारा है। जब देखो तब मन्दिर ! मङ्गलप्रसाद क्रोधित हुआ मन्दिर पहुँचा। पेटके लिए पूरा न पड़ता हो तो दान धर्मका औचित्य उसकी समझमें नहीं आता। खेती, घरके कामसे अवकाश नहीं और मन्दिर, कथा····। अपनी स्पष्टवादिताके कारण बदनाम हो गया है वह गाँवमें। दूसरोंकी आलोचनापर कभी ध्यान नहीं दिया उसने !

उसदिन—पहिले दिन कथामें पहुँचा था। भाई सबसे आगे था। बड़ी भीड़ थी। पुकारनेका साहस नहीं कर सका। थोड़ी देर प्रतीक्षा करनी पड़ी उसे। बड़ी सुन्दर कथा थी, बड़ा आनन्द आ रहा था। उसे पता भी नहीं लगा कि भाई कब उठ गया वहाँसे, वह अन्त तक सुनता रहा बैठा बैठा।

नित्य कथामें जाने लगा वह। उसे सुने बिना रहा नहीं जाता था कथा। बड़ा सुख मिलता था। घर आकर वह उन्हीं बातोंको सोचता रहता था। उन्हींका मनन करता रहता था। मनकी बात जीवनमें कब तक नहीं आवेगी। उसके द्वारपर दो चार साधु अब टिके ही रहते हैं। इस वर्ष रामलीलामें उसने खेतीका ध्यान भी नहीं रखा जुटे रहनेसे। सबसे पीछे जोते गये उसके खेत। सबसे अधिक चन्दा भी उसीने दिया।

'वह तो साधु ही हो गया'। एकादशी प्रदोष जैसे आये दिनके व्रत करता है वह। बिना शंकरजीको जल चढ़ाये पानी नहीं डालता मुखमें और अब जैसे क्रोध तो उसे आता ही नहीं। 'कहाँ तो रोज लाठी लिये किसी-न-किसीसे लड़ता रहता था और कहाँ ऐसा गऊ हो गया कि सामने खेत चरा लिया दिपईने तो भी हँसकर रह गया।'

'आपने उसके मुखसे कभी रामायण सुनी नहीं।' सचमुच उसीने बाबाजीकी कथाको समझा है। ऐसा अर्थ करता है कि आप मुख देखते रह जायँ। अन्ततः कभी नागा भी तो नहीं करता कथामें।

'कुछ सुना है आपने ? चौधरी जीवनलालने अपनी लड़कीकी मंगनी कर दी है उसके साथ।'

'चौधरी जीवनलाल।' चौंका सुनने वाला। 'वे दोनों गाँवोंके जमींदार हैं। क्या कमी है उनको। दस हलकी खेती है। आठ-आठ भैंसे लगती हैं। और ६ गायें हैं। एक दरिद्रको अपनी लड़की क्यों देंगे वे ?' विश्वास नहीं हुआ उसे।

'चौधरी नित्य कथामें आते हैं।' दूसरेने रहस्य बतलाया। वहीं पसन्द किया होगा उन्होंने। कथामें सबसे आगे बैठता है वह और समझता भी सबसे अधिक है। बाबाजीकी कृपा है उसपर। वे उसे कितना मानते हैं।'

'ठीक कहते हो।' दूसरा समझ गया बातको। 'चौधरीके एक ही तो लड़की है। धन-दौलत उनके ही घर क्या कम है जो वे ढूंढते। देखनेमें मङ्गल अच्छा है ही। खूब तगड़ा है। उसपरसे सुशील हो गया है। धार्मिक बन गया है और भला चौधरीको चाहिये क्या ? प्रारब्ध ही तो हैं अपने अपने। कहाँ भर पेट रोटी नहीं मिलती थी और कहाँ अब....।'

'लेकिन चौधरी पछतायेंगे।'

'क्यों ?'

'वह एक-न-एक दिन साधु होकर रहेगा। इसे तुम गाँठ बाँधलो।' दूसरेने बड़ी गम्भीरतासे कहा। अभी उसे खेती-गृहस्थीकी फिक्र नहीं रही। कथामें बैठे-बैठे रोया

करता है । पूजा करने बैठता है तो दो-दो घण्टे उठता ही नहीं । पुकारनेपर भी सुनता नहीं । कुछ रटता रहता है या गुमसुम हो जाता है ।'

'यह तो लक्षण अच्छे नहीं ।' दूसरेने खेद प्रकट किया । 'ऐसे लक्षणके एक साधुको मैंने देखा था । वे भी चाहे जब गुमसुम हो जाते थे । एक दिन समाधि लगायी उन्होंने । सचमुच समाधि ही हो गयी ।'

× × ×

'मङ्गल भैया , मेरे पाँच बीघा खेत हैं और वह मुर्रा भैंस व्याने ही वाली है ।' उसे कितना दुख था खेतोंके रेहन रखनेकी बात सोचनेमें भी , कोई किसान ही जानता है । इन्हीं खेतोंपर तो उसका , स्त्रीका और बच्चोंका पेट निर्भर है । भैंसके बच्चा देनेका दिन गिना करते हैं लड़के । जबसे उसने दूध देना बन्द किया, बच्चोंके गलेके नीचे एक बूँद छांछ तक नहीं गयी ।

'मंगतू काका , मुझे इतनी जल्दी वह दिन भूल जायगा ! अभी कल तक तो मैं तुम्हारे घरसे छांछ माँगता था । तुम्हारी छांछपर हम दोनों भाइयोंने दिन काट दिये हैं ।' उसका कंठ भर गया था । 'कितने रुपये चाहिये आपको ?'

'भैया , वहाँ कर्ज कर आया हूँ ब्राह्मणका ।' मंगतूको लग रहा था कि उसके सम्मुख कोई देवता बैठा है । 'यहाँ भी महाजनसे लेकर गया था । उसका व्याज बढ़ रहा है ।

अब पाँच ब्राह्मणोंको भी खिलाना ही होगा।' वह तीर्थ-यात्रा करके आया है तो हवन एवं ब्रह्म-भोजके बिना कैसे रह सकता है। विधि तो पूरी करनी ही पड़ेगी।

'पाँच क्यों, पचास खिलाइये ब्राह्मण। गाँवके ब्राह्मणोंको झाराका न्योता दे दीजिये।' भोलाके मनमें कोई कपट नहीं था। 'हमें आप कुछ नहीं खिलायेंगे।' बिरादरीको खिलानेकी इच्छा मंगतूके मनमें कम नहीं थी। वह सुयश प्राप्तिके इस अवसरको विवश होकर ही छोड़ सकता था।

'क्यों नहीं खिलाऊँगा भैया!' बड़े उत्साहसे उसने कहा। 'लेकिन खेत और भैंस, कोई एक छोड़ दोगे तो मेरे बच्चे भी पेट पाल लेंगे। तुम्हें आशीर्वाद देंगे!' उसकी बुद्धि जागृत हो गयी थी। इन मामलोंमें किसान पर्याप्त व्यवसायी होता है।

'तुमने हमें दूसरा समझ लिया काका?' मंगलको यह दैन्य असह्य था। वह भीतर गया और लौटकर उसने एक बंडल नोटोंका फेंक दिया मंगतू के सामने। 'इतनेसे काम न चले तो काका कहनेमें संकोच न करना!"

'इनकी लिखा पढ़ी तुम जैसे कहो कर दूँ!' उसने बंडल खोल लिया और जल्दी-जल्दी गिनने लगा। दस-दसके पूरे पचास नोट थे। 'ब्याज तो मैं अधिक देने योग्य हूँ नहीं। भैंस ले लेते तो मैं छुट्टी पाजाता!'

'भैंस तो मेरे घर ही बंधी है और ब्याजकी बात करते हैं आप अपने लड़केसे?' मंगलप्रसाद जैसे घबरा

उठा हो। 'लिखा पढ़ी कैसी ? जब हो दे दीजियेगा धीरे-धीरे। कोई जल्दी नहीं है। आपने तीर्थ करके परलोक सुधारा तो बच्चोंको अपनी सेवा तो करने दीजिये !'

'परलोककी तो भगवान जानें, तुम न होते तो यह लोक तो डूब ही गया था।' उसने रुद्धकंठसे उसका मुख देखते हुए कहा। 'परलोक भी मेरा बना होगा तो मरनेपर पता लगेगा, पर भैया तुमने तो जीते जी उसे बना लिया है।'

मज्जन-फल

मज्जन फल पेखिअ ततकाला।
काक होंहि पिक बकउ मराला॥
सुनि आचरज करै जनि कोई।
सत-संगति महिमा नहिं गोई॥

'पण्डितजी, पालागी!' लल्लूभाईने दोनों हाथ जोड़कर बड़ी नम्रतासे प्रणाम किया। पण्डितजीने आर्शीवाद तो दिया, पर उनका मुख उतर गया जो आशंका थी, वही हुआ। बड़ी शीघ्रतासे झपटे हुए चले जा रहे थे वे। किसी प्रकार इस द्वारसे आगे निकल जाते तो अपना अहोभाग्य मानते। ग्राममें मुख्यमार्गपर ही यह भवन है। सन्ध्याका समय हो गया, दूर जाना है, घूमकर निकल जानेकी बात इसीलिए मनमें आकर भी अपनायी नहीं गयी। अब मन-ही-मन पछता रहे हैं। न आगे बढ़नेमें कुशल दीखती और न खड़े रहनेमें ही।

'आप अपने श्रीचरणोंसे इस घरको पवित्र करनेकी कृपा नहीं करेंगे? अब तो सन्ध्या होगयी और रामपुर अभी पाँच कोस है। हमें एक समय तो सेवाका सौभाग्य मिले।' लल्लूभाईके स्वरमें निश्छल नम्रता थी।

'आपको यह भिक्षुक क्यों कष्ट दे। अभी चला जाऊँगा! पण्डित शिवशंकरजीको आज पहिली बार यहाँ यह व्यवहार देखनेको मिला है। आज अमावस्या है,

आकाशमें छिटफुट बादल हैं, इस समय पाँच कोस चले जानेकी बात उनका हृदय भी स्वीकार नहीं कर रहा है। वे स्वयं ग्राममें किसी सद्गृहस्थपर कृपा करनेको उत्सुक हैं; किन्तु इस द्वारपर उन्हें कृपा करनी होगी, यह तो वे कल्पना ही नहीं कर सकते थे। उनकी अब जो हिचकिचाहट है, उसमें अनभ्यास ही है, क्षोभ या रोष नहीं।

'आप जैसे अभिमान रहित अकिञ्चन ब्राह्मणोंके चरणोदयकी कामना तो देवता भी करते हैं, मैं तो बहुत क्षुद्र हूँ।' लल्लूभाईने आग्रहपूर्वक पण्डितजीकी पोथीका बण्डल ले लिया। गलीचा बिछा दिया तख्तेपर और सचमुच एक बड़े थालमें जल लेकर वे ब्राह्मणके चरणोंके समीप कुछ क्षणमें ही आ बैठे।

'अब यह क्या करते हैं आप ?' पण्डितजी जानते हैं कि यह शास्त्र सम्मत आचार है, लेकिन लोकाचारमें तो अब केवल कुलगुरुके पधारने पर उनके चरण धोना ही बच रहा है। फिर ग्रामके इन कुख्यात उग्र पुरुषसे चरण धुलानेकी बात मनमें जो नहीं बैठती।

'आप ब्राह्मण हैं, अतिथि हैं, मेरे लिए तो साक्षात् नारायण ही हैं !' लल्लूभाईको कोई विरोध सुनना नहीं था। सेवा करनेके समय तो सेवककी हठ ही प्रशंसनीय है। सेव्यका मना करना भी क्या उस समय सुनने योग्य होता है।

'आप तनिक विश्राम कर लें ! भोजन अभी बना जाता है !' लल्लूभाईने चरण धोये, अपने गमछेसे पोंछा उन्हें भली प्रकार। वह चरणोदक उन्होंने थोड़ा मुखमें

डाला, मस्तकपर चढ़ाया और सम्भवतः घरके अन्य सदस्योंको देने ही भीतर ले गये। लौटकर पण्डितजीके लिए जलपान लिये आये और फिर सूचना दे दी उन्होंने भोजनके सम्बन्धमें।

'आप कोई खटपट न करें। मैं यहाँ बना लूँगा।' ब्राह्मणको भोजन बनानेमें तो कोई झंझट होनेसे रही। फिर जो कथा बाँचते हुए पर्यटन करते हैं, उन्हें तो सदा अपने हाथसे बनाना ठहरा। वैसे कहीं पक्कीकी व्यवस्था हो जाय तो फिर चूल्हा फूँकना किसीको प्रिय नहीं हो सकता। सूचनाने पण्डितजीको प्रसन्न कर दिया था, अब तो यह था केवल शिष्टाचार।

'आप पता नहीं कितनी दूरसे पैदल आ रहे हैं। यदि कहीं पक्की भी न ग्रहण करनेका व्रत हो तो ……।' लल्लूभाई बीचमें ही अटक गये। वे सम्भवतः सोचने लगे कि तो क्या करना ठीक होगा। ग्राममें फलाहार की व्यवस्था झटपट नहीं हो पाती। थके ब्राह्मणको भोजन बनाना पड़े, यह तो उचित नहीं और केवल दूध या दही-पर अतिथिको रहने देना सोचा भी नहीं जा सकता।

'अरे नहीं, ऐसा कोई नियम नहीं है; लेकिन आप क्यों झमेला करें!' पण्डितजीने जल्दीसे कहा।

'इसमें भला क्या झमेला। यह तो हमारे कोई पुण्य आज जागे हैं कि आप यहाँ पधारे।' लल्लूभाई चले गये सामने कुएके पास लगे केलेमें-से एक कच्ची धार शाकके लिए काटकर भीतर देने।

× × ×

'भैया, अब तुम्हीं उन लोगोंको मना कर दो! कोई मुझे जुआ खेलनेका लोभ देता है और कोई भांग लाकर मुखसे ही लगाता है। मैं मना करता हूँ तो सब चिढ़ाते हैं। मुँह बनाते हैं। आज पासके गाँवमें बारात आयी है, उसमें कोई नाचने वाली आयी है। सब मुझे ले जानेको अड़े हुए थे। पकड़कर ले जा रहे थे। मैंने कहा कि पंडित शिवशंकरजी आये हैं, कथा होगी, सो सब मेरी हँसी करने लगे। बड़ी कठिनाईसे आ आया हूँ।' गोरा छरहरा युवक, दूधसे उजले वस्त्र, अच्छे संवारे केश, ग्राममें भी वह नगरके युवकोंकी भाँति सदा सजा रहता है। घर सम्पन्न है और बड़े भाई उसपर अपार स्नेह करते हैं। उसे पिताके परलोक गमनकी कभी स्मृति ही नहीं हुई। बड़े भाई अभी उसे 'खाने-खेलने' योग्य ही मानते हैं और है भी वह अल्हड़; लेकिन अब अपने पुराने मित्रोंसे वह ऊब गया है। वह जानता है कि उसके भैया यदि एकबार डांट दें सबोंको तो फिर कोई उससे बोलनेका नाम न लेगा। पूरा गाँव तो क्या, आसपासके सब गाँव लल्लू भाईके नामसे काँपते हैं। लेकिन अब ये भैया हैं कि पूरे गौ बन गये। आज वह अपने भैयासे मित्रोंके सम्बन्धमें पहली बार अभियोग लेकर आया है।

'वे सब भी तुम्हारी ही भाँति अभी बच्चे हैं। तुमने ही तो उनको यह सब सिखाकर बिगाड़ा है। उनके अंगुआ (नेता) तुम्हीं थे अब तक। अब यह तो तुम्हारा कर्तव्य है कि उन्हें सुधारो। उनको ठीक रास्तेपर ले आओ। इस प्रकार उनको छोड़ देना तो ठीक नहीं होगा न?' अब ये बड़े भैया तो किसीको एक कड़ी बात

कहनेको तैयार ही नहीं होते। इतनी सूचना और दे दी उन्होंने—'देखो, पण्डितजी कहींसे-चले चलाये थके-माँदे आये हैं। अब उनके पास कथा-वार्ताकी चर्चा मत करना। उन्हें विश्राम करने दो। तुम कथा सुनना चाहते हो तो कल पण्डितजीसे प्रार्थना करूँगा। उन्हें जब सुविधा होगी, दस-पाँच दिन यहाँ रहकर कथा सुनावेंगे। तुम्हारे निमित्तसे हम सब भी पवित्र होंगे।'

'अरे लल्लूभाईजी, मैं थका नहीं हूँ। नन्हेंके मनमें तो आयी भगवानकी कथा सुननेकी बात। ब्राह्मणको भला भगवच्चर्चामें क्या थकावट!' पण्डितजी सोये तो थे नहीं, उन्होंने दोनों भाइयोंकी बात सुन ली और पुकार लिया उन्हें।

'पण्डितजी, यह तो आपकी कृपा है; किन्तु इससे हम कहीं घाटेमें न रहें। हमारे यहाँ एक महीने आप रामायण सुनानेकी कृपा करें।' लल्लूभाईने तत्काल प्रस्ताव कर दिया।

'मेरा तो काम ही यही है। तुम्हें जब पसन्द हो तभी।' भला पण्डितजीको क्या समय और क्या सुविधा। यह तो सदा यजमानपर निर्भर रहा है।

'भैया, मुझे तनिक जाना पड़ेगा। रामदासके पेटमें बड़ा दर्द है!' कोई आया, उसने नन्हेंसे कुछ कहा और नन्हेंने बड़े भाईसे पूछा। पण्डितजी बैठ गये थे। उन्होंने ही पूछ लिया कि क्या बात है।

'रामदासके पेटमें दर्द है। मेरे भाग्यमें इस समय कथा सुनना नहीं लिखा है!' नन्हेंने बड़ी नम्रतासे मस्तक

झुकाया। इस युवकमें यह एक सद्‌गुण सदासे रहा है कि किसीकी पीड़ाके अवसरपर यह पहुँच जाता है। वैद्य ग्राममें हैं नहीं। थोड़ा-बहुत इसने सुन-सुनाकर सीख लिया है। सरल ग्रामीणोंके कष्ट उपचारकी अपेक्षा सहानुभूति ही अधिक चाहते हैं।

'नन्हें तो सचमुच हंस है!' पण्डितजीने पता नहीं कितनी बार सुना और सोचा है कि लल्लूभाईका यह सजा-सजाया सफेद रहनेवाला भाई छंटा हुआ है। स्वयं पण्डितजी उसे बगुला कहा करते थे, पर आज जो बात उन्होंने कही है, वह उनके हृदयसे निकली है।

'महाराज, मेरे एक ही भाई है। वह हंस-परमहंस न बने, यही आशीर्वाद दीजिये।' लल्लूभाईने हंसका कुछ और ही अर्थ समझा। पण्डितजी हँस पड़े उनकी बात सुनकर।

× × ×

'लल्लूभाईको हो क्या गया?' पण्डित शिवशंकरजी घर आये; पर उनके मनको एक ही बात मथे डालती है। बात है भी ऐसी ही। सब जानते हैं कि लल्लूभाईका स्वभाव सीधे बात करनेका नहीं है। भगवान दुष्ट पुरुषोंको जब धन दे देते हैं, तब कौनसे अनर्थ नहीं होते संसारमें। ऊपरसे लल्लूके शरीरमें दैत्य जैसा बल है और उनका छोटा भाई ग्रामके उद्धत लड़कोंका अगुआ है। लल्लूभाईके द्वारके सम्मुखसे कोई निकल जाय और उसे दो-चार खरी-खोटी न सुननी पड़े; ऐसा भाग्यशाली कोई ही होता है। वह तो वायुको भी गाली देता है।

प्रणाम करो तो कहेगा कि 'आजकल अकड़कर बोलता है !' चुपचाप चले जाओ तो प्रणाम तक न करनेका दोष देगा। पशुओं तकको देखकर गन्दी गालियाँ बकता रहता है। कौवेकी भाँति दिनभर काँव-काँव करना ही उसका स्वभाव और ऐसा व्यक्ति जब सहसा मधुर-भाषी कोकिल बना मिले—पण्डितजीके आश्चर्यको कैसे अस्वाभाविक कहा जा सकता है।

'पूर्णिमासे ही लल्लूभाईके यहाँ रामायणकी कथा होगी। नन्हेंने बड़ी प्रार्थना की है कि इस मार्गशीर्ष भर मैं और कहीं न जाऊँ।' पण्डितजीने जब पत्नीको यह संवाद दिया, ब्राह्मणीको हँसी आगयी अपने पतिके भोलेपनपर।

'तुम भी उस बगुलेके चक्करमें आगये। वह दूसरोंको बनानेमें बड़ा चतुर है। पूरा मक्कार है। तुमको उसने बनाना तो नहीं स्थिर कर लिया है ? दोनों भाई एकसे हैं।' पण्डितजीको भी लगता है कि कहीं ब्राह्मणीका सन्देह ही सत्य न हो; किन्तु लल्लूभाईको कभी किसीने इस प्रकार धोखा देते नहीं सुना। वह मुखका ही ठर्रा है और अब तो बहुत मधुर-भाषी हो गया है।

'आपको कोई धोखा नहीं हुआ है। लल्लूभाई तो सचमुच कौवेसे कोकिल हो गये हैं और उनके छोटे भाई नन्हेंको आप ठीक ही हंस कह आये। वे पहिले चाहे जैसे रहे हों, आज तो दोनों एक-दूसरेसे बड़े सत्पुरुष हो गये हैं।' ग्राममें सबसे वृद्ध, सबसे बुद्धिमान, सबसे अनुभवी पण्डित राममनोहरजी ही माने जाते हैं। सन्ध्या समय

पण्डित शिवशंकरजीने जब उनके सम्मुख सब बातें प्रकट कीं तो वृद्ध पण्डित भाव-गम्भीर हो गये ।

'मुझे दो महीने बाहर लग गये, लेकिन लल्लूको इस प्रकार बदल जानेके लिए तो यह भी बहुत थोड़ा समय है ।' यह ठीक कि मनुष्य परिवर्तित हो सकता है; किन्तु उस परिवर्तनके लिए भी तो समय चाहिये ।

'आप तो दो महीनेकी बात करते हैं ।' वृद्ध पण्डितने बताया—'वे दोनों भाई तो कुछ क्षणोंमें बदल गये । सायंकाल वे काग और बगुले थे और प्रातः जिन्होंने देखा, वे सब आश्चर्यमें पड़ गये । आप तो दो महीनेपर लौटे हैं; किन्तु हम सब तो अब अभ्यस्त हो गये । लल्लू-भाईकी तब धाक थी और अब सबके हृदयमें उनके प्रति अपार आदर है । नन्हें तो अब जैसे सभीका स्नेह पात्र हो गया है ।'

'यह सम्भव कैसे हुआ ?" पण्डित शिवशंकरजीके नेत्र वृद्धके मुखपर स्थिर हो गये ।

'यह तो मैं नहीं जानता; किन्तु सुना कि एक जटाधारी सन्त आये और लल्लूभाईकी गालियोंकी चिन्ता किये बिना उन्होंने उनके ही द्वारपर उनके तख्तेपर आसन डाल दिया । रात्रिमें क्या हुआ, कौन जाने । सबेरे तो दोनों भाई फूट-फूटकर रो रहे थे । सन्त कब रमते राम हुए, यह पता नहीं ।' वृद्धने जब बात पूरीकी, पण्डित शिवशंकरजीका आश्चर्य दूर हो चुका था । सत्संगके अमित प्रभावके सम्मुख यह कोई आश्चर्यकी बात तो है नहीं । उन्होंने केवल इतना कहा — 'लल्लूभाई भाग्यवान हैं ।"

ऋषि-चरित

बालमीक नारद घट जोनी।
निज निज मुखनि कही निज होनी ॥

'मैं नाममात्रको ब्राह्मण था। संध्या एवं वेदाध्ययनसे हीन विप्र शूद्र माना जाता था तब और इस प्रकार मैं शूद्र था। मेरे कर्मोंने चाण्डाल या उससे भी हीन बना दिया था मुझे। अपढ़ होने से यज्ञ-याग करा नहीं सकता था। कर्मच्युत होनेसे दान पानेका भी अधिकारी नहीं था। श्रम करनेमें रुचि थी नहीं और न घरमें द्रव्य था जो व्यापार करता। मुझमें त्याग कहाँसे आता ?

घरमें असमर्थ माता-पिता थे। प्रौढ़ा पत्नी थी और एक बालक था बारह वर्षके लगभगका। सबके पालन-पोषणका भार मुझपर ही था। मैं वार्धक्यमें भी वानप्रस्थकी बात सोच नहीं सकता था, अभी तो तरुण था। कुटुम्बमें अत्यन्त आसक्ति, प्रबल मोह था मेरा। घरके किसी प्राणीको कष्ट पाते देख नहीं सकता था। सब सुखसे अच्छे भोजन-वस्त्र पावें, यही मेरी इच्छा थी।

दूसरा कोई सरल मार्ग न देखकर दस्युवृत्ति अपनायी मैंने। मेरे शरीरमें दैत्यकी भाँति बल था। मेरे ग्रामसे लगभग आधे योजन दूरसे तीर्थ यात्राका मार्ग जाता था। वहाँ पूर्ण सुनसान था। घोर वन था और कोई ग्राम या

उपयुक्त स्थल बनाया था।

मैंने कोई दल नहीं बनाया था। जब कई लोग होते तो पीछेसे अकस्मात और कोई एक दो होते तो सामनेसे ही आक्रमण कर देता। मेरा आक्रमण कभी असफल नहीं हुआ और लंगोटी धारी साधु भी मेरे लिए उपेक्षणीय नहीं थे। मुझे वधमें आनन्द आता था। तड़पते चीखते मानवको देखकर मैं प्रसन्नता के मारे ठठाकर हंसता था। इतने व्यक्ति मारे मैंने कि उनमें जो द्विजाति थे, उनके यज्ञोपवीतसे साढ़े सत्तावन शकट भरे गये।

उस दिन मेरे पता नहीं किस पुण्य का उदय हुआ था। देवर्षि नारद भटक पड़े उधरसे। मैंने लट्ठ उठाकर ललकारा उन्हें। 'भैया, तुम इतना पाप किस लिए करते हो? कैसे भोगोगे उन्हें?' पूछा उन्होंने।

'मेरे परिवार को क्या तुम खिलाओगे?'

'कौन किसका है? अपने कर्म अपनेको ही भोगने पड़ते हैं!'

'वाह, भोजन सब करते हैं और फल मैं अकेला भोगूंगा?'

'विश्वास न हो तो पूछ लो उनसे!'

'बड़े अच्छे हो तुम, मैं उधर जाऊँ और तुम रास्ता नापो!'

साधु झूठ नहीं बोलते। तुम मुझे किसी पेड़से बाँध जाओ !'

मैंने उन्हें अपनी रस्सीसे कसकर बाँध दिया और देख लिया कि आसपास कोई खोलने वाला छिपा नहीं है। घर आया वहाँसे और बारी-बारीसे सबसे पूछने लगा।

'हमने तुम्हें पाला है, अब तुम हमें पालो !' माता-पिताने निराश कर दिया।

'मैंने तो तन-मन प्राण दे दिया है, पालन करना तो कर्तव्य है तुम्हारा।' पत्नीका उत्तर स्पष्ट था। पाप पुण्यका भाग भला वह क्यों ले।

'आप भी तो असमर्थ होंगे। मैं बदला चुका दूँगा। न भी चुकाऊँ तो बच्चेका पालन तो पशु पक्षी भी करते हैं।' बालक पुत्रको भी पिताके पाप-पुण्यमें कोई भाग लेना स्वीकार नहीं था।

बड़ा दुःख हुआ। बड़ा पश्चाताप हुआ। भागा आया और रस्सी काट कर महापुरुषके चरणोंमें गिर पड़ा। परिवारसे घृणा हो गयी थी और घृणा हो गयी थी शरीरसे भी 'कैसे उद्धार होगा इस अधमका।'

'राम राम कहो !' मेरा गुरु मन्त्र था वह।

'मा....रा' यह अभागा 'राम' भी नहीं कह सकता था तब।

'मरा, मरा ही सही ! हो जायगा उद्धार ! मन लगाकर जप करो।' वे चले गये और उनके उस

दिनके कुछ क्षणोंके सङ्गने मुझे श्रीरामायण प्रणेता महर्षि वाल्मीक बना दिया। यह दूसरी बात है कि मैं बैठा युगों तक जप करता रहा उस मन्त्रका। मेरे शरीरपर दीमकोंकी मिट्टीका टीला बन गया और भगवान ब्रह्माने मुझे विरत किया उस तपसे। उन्हींकी कृपासे यह स्वस्थ शरीर प्राप्त हुआ। वह लगन, दृढ़ता और तितिक्षा क्या मुझमें थी ? वह तो देवर्षिके संगसे उपलब्ध हुई।'

यह आत्मगाथा महर्षि वाल्मीकने अपनी रामायणमें स्वयं गायी है। मैं तो अनुवादक मात्र हूँ।

× × ×

'मैं गन्धर्व था अपने प्रथम जन्ममें। उस जन्ममें, जिसका मुझे स्मरण है। बड़ा सुन्दर था और अत्यन्त निपुण गायक भी। नाम तो मेरा तब भी नारद ही था। अपसराएँ मुझे बहुत चाहती थीं। मैं भी अत्यन्त कामी था और मेरी अनेक स्त्रियाँ थीं। उनसे पृथक मैं रह नहीं सकता था।

हम उपदेव थे और देवलोकोंमें उत्सवोंके अवसरपर हमें गायनके लिए जाना ही पड़ता था। ब्रह्मलोकमें पितामहने भगवान् वामनके उस दिनके उपलक्षमें जब उन्होंने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड तीन पगोंसे माप लिया था, उत्सवका आयोजन किया। अप्सराएँ नृत्य करनेको, किन्नर वाद्य-वादनको और गन्धर्व गायनके लिए बुलाये गये। सभी देवता और लोकपाल आमन्त्रित होकर पितामहकी सेवामें पहुँचे थे।

मेरे सिर कामका भूत सवार था। आमन्त्रित होनेपर मद्यपान करके स्त्रियोंके साथ मैं पद्मासनके सम्मुख पहुँचा और वहाँ भी स्त्रियोंसे हास परिहास करता रहा। मर्यादा भंग देखकर स्रष्टाको क्रोध हो आया। उन्होंने शाप दे दिया—'तू शूद्रोंकी भाँति यहाँ स्त्रियोंके साथ आया है, अत: मर्त्यलोकमें शूद्र हो जा!'

मैं गिरा उस पुण्य लोकसे। मेरी कातर आर्त पुकारने वृद्ध पितामहके हृदयको द्रवित कर दिया। मैंने सुन लिया उन्हें कहते हुए 'तेरी स्मृतिपर काल यवनिका न डाल सकेगा और एक ही जन्ममें उद्धार हो जायगा तेरा।'

जब मर्त्यलोकमें मैंने कुछ समझने योग्य अवस्था प्राप्तकी तो देखा कि मेरी माता एक ब्राह्मणके यहाँ दासी है। मेरे पिताका कब देहान्त हुआ, मुझे स्मरण नहीं। ब्राह्मण देवता थे साधुसेवी। उनके यहाँ प्राय: सन्त टिका करते थे।

एक बार सन्तोंने चातुर्मास्य किया उन विप्र देवके यहाँ। बालक होनेपर भी मैंने उन सन्तोंकी मन लगा कर सेवाकी। उनके उच्छिष्टसे ही हम माता-पुत्र उदर भर लेते थे। खेल-कूदमें मेरी रुचि नहीं थी। सदा सन्तोंके समीप रहता और उनकी परस्पर भगवच्चर्चा सुना करता। उनकी छोटी-मोटी सेवासे कभी जी न चुराता।

मैं शूद्र था और बालक था। दयालु सन्तोंने फिर भी मुझे अधिकारी समझा और जब वे वहाँ से जाने लगे, मुझे

श्रीहरि का ध्यान बतलाते गये। कृपा करके मन्त्रदीक्षा भी दे दी उन्होंने। मैं अब बराबर मन्त्र जप करता और ध्यान करता दिन भर।

मेरी माताका मुझपर अत्यन्त स्नेह था। मैं भी उसके स्नेह पाशमें बँधा था। एक दिन रात्रिमें गाय दुहते सर्पने उसके पैरमें काट लिया। देहान्त हो गया उसका। मैंने प्रभुकी कृपाका अनुभव किया इस घटनामें। चल पड़ा वहाँसे उत्तर दिशामें। पथ देखा था नहीं, जंगलमें भूलता भटकता बढ़ता गया। अन्तत: श्रान्त होकर एक स्वच्छ सरोवरसे जल पीकर समीपके पीपलके मूलमें बैठ गया आसन लगाकर। ध्यान करने लगा मैं।

नव दूर्वादल श्याम पीताम्बर परिवेष्टित, स्निग्ध चतुर्भुज मनोहारी ज्योति हृदयमें आविर्भूत हो गयी। एक क्षणको मेरा अहं डूब गया। एक झलक आयी और तिरोहित हो गयी। मैं मारे दु:खके क्रन्दन करने लगा।

'इस जन्ममें तुम मेरा साक्षात नहीं कर सकते कुयोगी मुझे कभी देख नहीं पाते। अपनी ओर तुम्हारी रुचि करनेके लिए मैंने कृपा करके एक झाँकी दी है।' आकाशवाणी हुई।

मैंने पृथ्वीपर सिर रखा और लौट आया मानव जगतमें। अब जो स्वेच्छासे मिल जाय उसीसे जीवन-यापन करना और श्रीहरिका गुणगान करते हुए पृथ्वीपर विचरण करते रहना मेरा व्रत हो गया। इस प्रकार प्रारब्धके परिमित वर्ष समाप्त हो गये और एक दिन शरीर

छूट गया। इस कल्पके प्रारम्भमें स्रष्टाने जब सृष्टिका प्रारम्भ किया तो मैं उनके मनसे प्रकट हुआ।

उस शूद्र जन्मके सत्संगके प्रतापसे मैं ब्रह्मपुत्र होगया। अब तो जब भी वीणा उठाकर मैं प्रारम्भ करता हूँ—

'नन्द कुमार विष्णु नारायण, श्रीहरि दामोदर गोपाल।'

मेरे अतःकरणमें इस प्रकार प्रभु प्रकट हो जाते हैं जैसे पुकारनेपर दौड़ते हुए आ जाते हों।'

देवर्षि नारदने सरस्वतीके तटपर उत्तरा खण्डमें शम्या प्रासमें भगवान कृष्ण द्वैपायनसे अपना यह जीवन वृत्त सुनाया है और भगवान वेदव्यासने उसे श्रीमद्भागवतमें उद्धृत किया है।

× × ×

मुझे अगस्तजीका स्वकथित जीवन चरित प्राप्त नहीं हुआ। अवश्य ही वह किसी पुराण, उप-पुराण या संहितामें होगा। मैं उनका वह उत्पत्ति वृत्त दे रहा हूँ जो ऋग्वेदमें पाया जाता है। मेरा अनुमान है कि उन्होंने भी यही वृत्त अपने मुखसे भी कहा होगा।

महाराज मरुत्का वह विख्यात राजसूय यज्ञ हो रहा था, जिसमें मोटी हाथीके सूंड़के समान घीकी धारा द्वादश युग तक अग्निमें अखण्ड पड़ती रही और अग्निको अजीर्ण होगया। यह यज्ञ हो रहा था महाराजकी दिग्विजयके उपलक्षमें और इसका उद्देश था पुत्र प्राप्ति।

सूर्य मण्डलके अधिष्ठाता प्रतिमास परिवर्तित हो जाते हैं। शुक्र एवं शुचि, आजके शब्दोंमें ज्येष्ठ-आषाढ़का सन्धिकाल था। मित्र नामक आदित्य जा रहे थे और वरुण नामक आदित्य स्थान ग्रहण कर रहे थे। मरुत्के यज्ञमें ऋषियोंने आदित्यका आह्वान करते हुए आहुति छोड़ी। दोनों आदित्य उपस्थित हुए।

भगवान नारायणका उपहार विश्वका घनीभूत सौन्दर्य स्वर्गकी सर्वश्रेष्ठ अप्सरा उर्वशी यज्ञान्तमें नृत्य कर रही थी। दोनों आदित्योंका उपस्थान संतति कामनासे हुआ था। उर्वशी उन तेजोमय रूपोंको देखकर मुग्ध हो रही थी। उसमें काम उत्पन्न हो गया था। देवताओंमें भाव प्रतिक्रिया करता है। वे संकल्पाधीन होते हैं। मित्र और वरुणमें भी उर्वशीके प्रति काम जगा। उन्होंने गगनमें चले जानेका प्रयत्न किया। कामकी प्रबलताके कारण वीर्य स्खलित हो गया। उर्वशीके नेत्रोंने ही उन्हें अधिक आकर्षित किया था, अत: उसके नेत्रको लक्ष्यकर उन्होंने रेतोत्सर्ग कर दिया।

यज्ञ मंडपमें बसतीवर नामक यज्ञ कुम्भ था। वह तेजोमय वीर्य कुम्भके मुखपर पड़ा। कुछ भाग जलमें चला गया और शेष कुम्भसे होता नीचे लुढ़क चला। शीघ्रतासे विश्वे देवोंने उसे एक कमलमें ले लिया। वीर्यका जो भाग जलमें पड़ गया था, उससे महर्षि मत्स्यकी उत्पत्ति हुई। जो भाग विश्वे देवोंने कमलमें ले लिया था, उससे सूर्यवंशके पुरोहित ब्रह्मर्षि वशिष्ठजीका

प्राकट्य हुआ। जो भाग कुम्भपर लगा रह गया था, उससे बड़वानलके अवतार 'समुद्र पायी भगवान अगस्त प्रादुर्भूत हुए।

जिनके श्रीचरणोंमें विन्ध्यगिरि नत हुआ और जिनकी आज्ञासे अब तक नत पड़ा है, जिन्होंने महासागरको तीन चुल्लूमें पानकर लिया, जिन्होंने महादुर्दम वातापि तथा इल्वलको पचा डाला, उन महातेजा महर्षिका प्रभाव कौन वर्णन कर सकता है ?

देवताओंका वीर्य—क्या हुआ जो वह एक अप्सराको उद्दिष्ट करके त्याग किया गया था, उसे देवताओं और महर्षियोंका सान्निध्य प्राप्त हुआ। उससे विश्व विश्रुत महर्षियोंके प्राकट्यमें आश्चर्य भी क्यों ?

अनन्योपाय

जलचर थलचर नभचर नाना।
जे जड़ चेतन जीव जहाना ॥
मति कीरति गति भूति भलाई।
जब जेहि जतन जहाँ जेहि पाई ॥
सो जानब सतसंग प्रभाऊ।
लोकहु वेद न आन उपाऊ ॥

'मैं परीक्षा करूँगा।' यदि कोई नरेश किसी हठपर उतर जाय तो उसे रोकेगा कौन।' मैं मानता हूँ कि बुद्धि, सद्गति ये दो तो सत्संगसे प्राप्त होते हैं; किन्तु यश, ऐश्वर्य एवं सद्गुणोंके लिए किसी सत्संगकी क्या आवश्यकता ?"

'आपकी इच्छा।' वृद्ध पण्डित महाराजके पिता के समयसे श्रीरामायणकी कथा सुनाते रहते हैं। उन्होंने राजाओंके स्वभावसे भली प्रकार परिचय प्राप्त कर लिया है। वे जानते हैं निरेशोंकी हठ या कुतर्कका प्रतिवाद नहीं करना चाहिये। उन्हें अवस्थाने भी की शान्त बना दिया है और सन्तोषी तो वे सदा से रहे हैं।

'सद्गुण तो स्वाभाविक हैं।' महाराज इतनी जल्दी नहीं छोड़ना चाहते थे पण्डितजी को। 'कोई दुःसंग न मिले तो मनुष्य छल-कपटहीन सहज स्वभावका होगा। ऐश्वर्य तो परिश्रमसे प्राप्त होता है और यशकी इच्छा हो

और समीप धन हो तो वह दुर्लभ नहीं।' बड़े आदमी सभी एक ही व्यसनके व्यसनी होते हैं। वे दूसरोंकी बात सुनना ही नहीं चाहते। कोई भी मिलने आवे तो इसके बदले कि उसकी सुनें, उसके आनेका कारण जानें, अपनी ही अलापने लगेंगे। व्याख्यान झाड़ देना उनका स्वभाव होता है। आप किसी भी बड़े आदमीसे मिलने जायें तो वे-सिर-पैरके एक घंटे भरके व्याख्यानको हाँ-हूँ करके सुन लेनेको प्रस्तुत रहना चाहिये आपको।

'मैंने तो जो लिखा है, वही सुनाया।' पण्डितजी अब छुट्टी चाहते थे। उनका रामायण सुनानेका समय समाप्त हो चुका था।' 'आप भी ठीक ही कहते हैं।'

'मैं भी ठीक कहता हूँ और लिखा भी ठीक ही है।' महाराज हँस पड़े पण्डितजीके भोलेपनपर।' आप यह बताइये कि परीक्षा कैसे हो!'

'परीक्षा ?' पण्डितजी चौंके। उन्होंने सोचना प्रारम्भ किया। ऐसी बातकी परीक्षा-पद्धति किसी ग्रन्थोंमें भी लिखी नहीं है।

'एक लड़का ढूंढ़ा जाय नवजात।' महाराजने स्वयं समस्या सुलझा दी। सब बड़े-बड़े ज्योतिषी जिसे यशस्वी, धर्मात्मा, ऐश्वर्यशाली, बुद्धिमान बतलावें और जो दीर्घायु तथा निरोग भी हो। यह पता लगा लिया जाय कि उसकी माताने किसी साधु-सन्तका दर्शन न किया हो साल-डेढ़-सालसे। नहीं तो आप कहेंगे कि बालकने गर्भमें ही सत्संग प्राप्त कर लिया। उसके लिए सुनसान वनमें एक मकान बना दिया जाय और उसमें उसके लिए एक

गूंगी है। कौन उसे बोलना सिखलावे। वह भी अपनी धायके समान संकेत करता है। लिखना भला कैसे आता उसे ?

भवनकी दीवारें भर उठी हैं चित्रोंसे। गौरैया, मैना, कबूतर, कौवे, इन्हीं सबके चित्र हैं। बादल, तारे, विद्युत, वर्षा और चन्द्रके चित्र भी आप देख सकते हैं। कुछ चित्र वृक्षोंके ऊपरी भागके भी हैं, जो भाग भवनसे दिखलायी पड़ता है। कभी बैठे, कभी उड़ते, कभी अंडा देते और कभी बच्चेके मुखमें चुग्गा देते, अनेक दशाओंके चित्र हैं प्रत्येक पक्षीके। प्राकृतिक दृश्य भी जो है, बड़े सुन्दर और सजीव हैं।

प्रतिभा थी और उसके लिए कोई दूसरा मार्ग न मिला तो वह पूर्ण हो गयी एक ही धारामें। कुमारके पास न बोलनेका साधन था और न पढ़ने लिखनेका। उसने दीवारोंपर लकीरें खींचनी प्रारम्भ करदीं। जो देखता, उसीको अपनी रेखाओंमें बाँधना चाहता। धीरे-धीरे टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओंने आकृतियाँ धारणा कीं और भोंड़ी आकृतियां वास्तविकतामें परिवर्तित होती गयीं।

धाय बड़ी प्रसन्न हुई, जिस दिन कुमारने उसकी एक भद्दी-सी तस्वीर कोयलेसे बनादी उज्वल भित्तिपर। अनेक आकृतियां बनीं फिर उसकी। खाते-पीते, सोते-बैठे, भोजन देते और बर्तन मलते, अनेकों आकृतियाँ थीं उसकी। सबसे अधिक श्रम कुमारने उसीके चित्रणमें किया। उसका मूक प्रोत्साहन कुमारको उत्तेजित जो करता था। यह संकेतोंसे आनन्द जो प्रकट करती थी।

कलाका कोई आदर्श नहीं था। उसके कोई सिद्धान्त नहीं थे। इनको जाननेका कोई उपाय भी नहीं था। भाव नहीं थे कलामें। इतनेपर भी सजीव थी वह। उसमें इतनी वास्तविकता थी कि बड़े-से-बड़े चित्रकार ठक हो जाय देखते ही।

कभी-कभी धायके नेत्र भर आते थे। वह मन ही मन सोचती थी कुमार कहीं पढ़ पाया होता।' कुमारमें उस गूंगीने अपने ही उदरजातका स्नेह संचित कर रखा था। कुमार उदास हो जाता। उसके बड़े-बड़े नेत्र टपकने लगते। अन्तरकी करुणा प्रत्यक्ष होनेके लिए शिक्षाकी आवश्यकता नहीं रखती।

बीमार हुई इस अवधिमें गूँगी कई बार। वह भोला बच्चा भूल जाता है अपनी तस्वीरोंसे खेलना! वह उसके समीप ही तब बैठा रहता है। जल, फल, कम्बल, संकेतसे सूचित वस्तुएँ बड़ी तत्परतासे पहुँचाया करता है। अनेक प्रकारसे उसे प्रसन्न करनेका प्रयत्न करता है और धायके कष्टसे कभी-कभी तो रो पड़ता है। बड़ा दयालु लड़का है वह।

स्वच्छता, संकेत और चित्र-निर्माणमें उसने अपनी प्रतिभा एवं सुरुचिका पूर्ण परिचय दिया। इतना कुशल कलाकार क्या विश्वकी आँखोंसे छिपा रहेगा। आज या कल सुयश उसके चरण चूमेगा और लक्ष्मी तो प्रतिभाकी दासी है। ऐश्वर्यका अभाव तभी होता है सफल कलाकारके समीप, जब उसे कोई व्यसन हो। इतना सरल इतना दयालु व्यसनी तो क्या होगा? समाजका पीड़ित वर्ग

उसको सद्भावनाओंको जगा देगा। गुणागार हो जायगा वह और तब उसकी सद्गति नहीं तो क्या दुर्गति होगी ?

पूरे चौदह वर्ष — हाँ उतने ही वर्ष, जितने मर्यादा पुरुषोत्तमने काननमें बिताये थे, उस कुमारने भी बिताये उस भवनमें। महाराजकी अवस्था ढल चुकी थी। कानन कुमारके सम्बन्धमें उन्हें पूरी सूचना मिलती रहती थी। अब उन्होंने निश्चय किया कुमारको नगरमें लानेका। कुमारको अक्षर ज्ञान कराने तथा व्यावहारिक शिक्षा देनेकी व्यवस्था भी कर दी गयी थी।

बड़ी धूम-धामसे महाराज कुमारको लेने चले। हाथी, घोड़े, वाद्य एवं बन्दूकोंके धड़ाके, कुमारने जीवनमें प्रथम बार यह सब देखा। आज उसने जाना कि वह भवनसे बाहर भी जा सकता है। नवीन पशुओं एवं मनुष्योंकी भीड़ने उसे चौंका दिया। एक बार उसे झिझक हुई। भय तो वह जानता न था कि क्या होता है; फिर भी उसे लगा कि इस भीड़में वह खो जायगा और तब दौड़कर वह अपनी धायके समीप चला गया। वह उसके अंकमें छिप जाना चाहता था।

'जल, स्थल एवं आकाशमें रहने वाले जितने जड़-चैतन्य प्राणधारी हैं—भारतीय संस्कृति बृक्ष-पर्वत एवं नदियोंको भी जड़ होते हुए भी जीवधारी मानती हैं। उनमें बुद्धि, सुयश, सद्गति एवं ऐश्वर्यका जितना भी विकास है, सत्संगका ही प्रभाव है। किसी भी काल एवं स्थान तथा पात्रका भेद इसमें अपवाद उपस्थित करनेमें समर्थ नहीं।'

वही राजभवन, वही मध्याह्नोत्तर कथा श्रवणका काल। महाराजके कोई पुत्र नहीं था और उन्होंने सद्गुणी, सुशील, प्रतिभाशाली कानन-कुमारको दत्तक बना लिया था। आज तरुण युवराज 'मानस' का वही प्रसंग वृद्ध महाराजको सुना रहे थे, जिसे महाराजने कभी वृद्ध दिवंगत राज पंडितसे सुना था। अवश्य ही युवराजकी भाषा पण्डितसे कहीं परिमार्जित थी और उनका अर्थ कौशल उनकी प्रतिभाके अनुरूप था।

'इसमें क्रम-दर्शन खींचातानी हो सकता है; किन्तु उससे भी एक विचित्र अर्थ निकलेगा ही।' युवराज सुनाये जा रहे थे और पता नहीं क्यों महाराज धीरे-धीरे हस रहे थे। 'जलचरोंके बुद्धि–सचमुच कछुए, मछली और मेढकोंका जलकी स्थितिका ज्ञान कराके तदनुकूल व्यवहार चरम प्रतिभा बतलाती है और मुख्य संकेत तो है भगवान मत्स्यकी ओर, स्थल-चारियोंका सुयश—कीर्तिका लोभ एवं उसके लिए चेष्टा केवल मनुष्यमें पायी जाती है और उत्तम श्लोक सभी अवतार स्थल-चारी रूपमें ही हुए। नभ चरोंकी गति—गरुड़का वेग कहाँ मिलेगा दूसरे किसीको? यों तो 'गति' जीवकी परमगतिका संकेत है। जड़का ऐश्वर्य–सारे स्वर्ण-रत्न गिरि एवं सागरके गर्भसे ही तो प्राप्य हैं और वे ऐश्वर्यके उपकरण जड़ ही तो है। चेतनके सद्गुण—जहाँ चेतना ही नहीं, वहाँ सद्गुण कैसा? ये सब इनमें स्वाभाविक जान भर पड़ते हैं। वस्तुतः तो ये उन्हें सत्संगके प्रभावसे ही प्राप्त हुए हैं।'

मत्स्यावतारका कारण सप्तर्षियोंकी रक्षा और वैवस्वत मनुके पूर्व जन्मका चरित, यशका कारण धर्मादि एवं उसकी गुरुओंसे उपलब्धि, गरुड़की शक्तिसे उनके पिता कश्यपके तप:तेजका सम्बन्ध, स्वर्ण एवं रजत खनिजकी उत्पत्तिका कारण भगवान शिवका रेत: पात, चेतनोंमें संग जन्म सद्‌गुण आनेकी अनिवार्यता, बड़े विस्तारसे युवराजने सब सुनाया।

'बेटा! इसी सिद्धान्तके परीक्षणके लिए तुम्हारा विचित्र लालन पालन किया।' महाराजने कहा 'और तुम्हारी प्रतिभा, चित्रकला एवं दयालुताने सिद्ध कर दिया ये नैसर्गिक गुण हैं। इनके लिए संगकी कोई आवश्यकता नहीं।'

'महाराज क्षमा करें!' युवराज सहसा गम्भीर हो गये। उनके नेत्र भर गये। गद्‌गद् कण्ठ हो गया उनका। 'सम्भवत: मैंने श्रीमान्‌से कभी निवेदन नहीं किया कि मुझे कौओंसे चिढ़ थी और जब मैं उन्हें मारने दौड़ता तो मेरी धाय उन नेत्रोंसे मेरी ओर देखती जो मेरी क्रूरतापर फटकार वर्षा करती होतीं। उसने मुझे लकीरें खींचना सिखलाया और प्रारम्भिक चित्र तो उसीकी देन थे।'

ज्ञानका मार्ग

बिनु सत्संग विवेक न होई।
राम कृपा बिनु सुलभ न सोई ॥

दोपहर ढल चुका था, मध्याह्न सूर्य प्रतीचीकी ओर जाते-जाते भी अपने प्रखर प्रताप का परिचय जगतको दे जाना चाहता था। हमें इसकी कोई चिन्ता नहीं थी, खुले आकाशमें नंगे सिरपर हम अनन्त उदधिके वक्षपर रविरश्मियोंके रजत महोत्सव दर्शनमें जैसे अपनेको खो चुके हों। बड़े-बड़े शिला-खण्ड इधर-उधर पुलिन तट-पर महाकाय कच्छपोंसे पड़े थे और उन्हींमें-से एकको पीठपर हम चारों देख रहे थे। आकाश-सा अनन्त अकूल नीलोदधि पता नहीं किस अन्तर विक्षेपसे अपनी सहस्र-सहस्र भुजाएँ उठाता पटकता आक्रोश करता है। लहरें उठती हैं—एकसी ऊँचीं। लगता है—वे कूलकों अतिक्रांत कर लेंगी और हमें शिरसः स्नात करा देंगी। सो कुछ नहीं, उनका परस्पर संघर्ष ठीक भी है, किसीकी भी शक्ति इन्हीं कारणोंसे क्षीण भी होती है। बार-बार हमारे पैर धुल जाते थे। अनन्तसे पैर धोये जानेका यह आनन्द अनुभवकी वस्तु है। लहरें ऊँची होती जा रहीं थीं। समुद्रका वेग बढ़ रहा था। संध्याके मन्द चरणोंके साथ ज्वारके अलस पद भी लक्षित होने लगे थे। हमें वस्त्र भिगाने नहीं थे पीछे लौटना पड़ा।

यह अविरत आन्दोलन, यह असन्तोष, यह अविराम हलचल, क्यों और किस लिए ? अन्तरका प्रतिबिम्ब ही विराट वाह्यमें देखकर मुझे अपने साथीका प्रश्न जिसे हम सब अम्बुधि अवलोकनमें विस्मृत हो गये थे अधिक सारगर्भ जान पड़ा। जड़ और चेतन आकार भेद ही तो हैं। गति, स्थिति एवं उद्वेलकी दृष्टिसे उनकी एकात्मता कौन अस्वीकार करेगा ?'

'मैंने बहुत सोचा, बहुत पढ़ा भी जितना मेरे लिए शक्य था—' मैंने अपने साथीसे कहा 'पर जहाँ तक मैं समझता हूँ सृष्टि, गति, असन्तोषका रहस्य प्रत्येक व्यक्तिका अपना रहस्य है और सम्भवत: उसकी कुञ्जी उसके अपने ही अन्त:करणमें बन्द हैं ?'

'यह सब मैंने भी पढ़ा है।' मेरे मित्रके स्वरमें झल्लाहटकी अपेक्षा विरक्ति अधिक थी। 'किन्तु इन पहेलियोंको सुलझावे कौन और कैसे ?'

'सम्भवत: यह बताना किसी ऐसेके लिए कभी सरल नहीं हो सकता जिसने इन पहेलियोंको सुलझा न लिया हो' मुझे लग रहा था, कि इससे अधिक अच्छा उत्तर हो ही नहीं सकता।

'मैंने ऐसोंको बहुत ढूँढ़ा' साथी खीझ रहा था 'लगता है यह सब आकाश कुसुम जैसी बातें हैं। सब अंधेरेमें ही टटोलते हैं।'

'यदि इसलिए कि तुमने चोरी करना चाहा पर सफल नहीं हुए।' मेरे मित्र अकचका गये। 'जिसका यह रहस्य है, उनकी इच्छाके बिना तुम उसे सुलझा लेना

चाहते हो ! तुम भूलते हो कि इसे सुलझानेवाले निर्माता से एक हो जाते हैं ! उन्हें क्या ढूंढ़ा जा सकता है ? यदि यह संभव होता-- रहस्य या उसका निर्माता छिपा रह पाता ?'

'तब ?'

'तब निर्माताकी कृपा ही उपाय रह जाती है, और इसके लिए प्रार्थना एवं प्रतीक्षाके अतिरिक्त दूसरा कोई मार्ग मुझे ज्ञात नहीं है।'

× × ×

'आपने मुझे पहचाना नहीं !' चरण छूनेको झुकते समय उन्होंने मेरे हाथ पकड़ लिए और खींच कर गलेसे लगा लिया। बड़ी-बड़ी जटाएँ, लम्बी रूखी दाढ़ी, सघन मूछें, यदि इस कौपीनधारी वेषमें उन्हें नहीं पहिचाना तो कोई आश्चर्यकी बात न थी।'

'आप और इस तरह ?' एक सदा सजे रहनेवाले कोमल काय युवकका इस तपस्वी वेषमें पानेकी आशा मैंने की नहीं थी।

'बड़ी लम्बी कहानी है' मैं उनके समीप ही एक चटाईपर बैठ गया। धीरे-धीरे उन्होंने बतलाया कि किस प्रकार वे बम्बई में ही, शब्द साधन करते रहे और अन्तमें वहाँसे गिरनार आये। कुण्डलिनी जगाकर भी जब सन्तोष न हुआ तो आजकल हठयोगके पीछे पड़े हैं।

'मुझे सिद्धि नहीं चाहिये। चमत्कारोंमें मेरी रुचि नहीं !' वे सुना रहे थे 'मैं जानना चाहता हूँ और अब तक भी प्रकाशकी कोई रेखा दृष्टि-पथमें नहीं है !'

'तो आप क्लासमें बैठ कर नहीं, अखाड़ेमें दण्ड बैठक करके आचार्य होना चाहते हैं !' मैंने हँसते हुए कहा 'सो भी दर्शन शास्त्रके !'

'मैंने प्रस्थानत्रयी, पंचदशी और दूसरे बहुतसे ग्रन्थ खूब घोंट डाले हैं।' वे भी हंस रहे थे।

'पुस्तकें तो व्यर्थ हैं। प्रोफेसर गप्पबाजी करते हैं। आप कुश्ती लड़िए और सितार बजाइये जरूर ग्रेजुएट हो जायेंगे !'

'अब तुम पिटोगे !'

'साधुओंके पास चिमटे को छोड़कर और रहता ही क्या है ?'

'मालपुये भी वहीं मिलते हैं !' वे जोरसे हँस पड़े।

'लेकिन तुम्हें तो मिठाससे चिढ़ है !' मैंने कटाक्ष किया 'तुम तो जिज्ञासु हो न ?'

'ठीक ! सहसा वे गम्भीर हो गये। मैंने भी देखा, अब उनके चिन्तनमें विघ्न डालना ठीक नहीं।'

× × ×

'तुमने उपनिषदोंमें एक कथा पढ़ी होगी, कोई शिष्य रात्रिको गुरुके यहाँ पहुँचा। उसने किवाड़ खटखटाये, जिज्ञासा प्रगट की, भीतरसे आवाज आयी 'तत्वमसि' और शिष्य ने कहा 'अहम् ब्रह्मास्मि' वह लौट गया क्योंकि उसका काम पूरा हो गया था।' आज श्रीसरजूजी के किनारे उन्हें धूनीके पास बैठा देखकर मैं एकबार फिर चौंका था। उनके प्रसस्त गौर भालपर ऊर्ध्व पुण्ड्र

बड़ा सुन्दर प्रतीत होता था। और इतनी ही शान्ति थी उनके नेत्रोंमें। इस साधू वेषने भी उनके सरल सौहार्द्र-पर कोई आवरण नहीं डाला था। हम वैसे ही मिले जैसे बारह वर्ष पूर्व मिलते और शीघ्र ही वाणीने समयके अन्तरको समाप्त कर देना चाहा। वे अपनी सुना रहे थे 'इतने बड़े रहस्यकी कुञ्जी इतनी छोटी है यह जानकर आश्चर्य ही हुआ।'

'आप अपने सम्बन्धमें भी पहेली कहने लगे हैं।' सच्ची बात तो यह है कि मैं इस संकेत वृत्तसे पिंड छोड़नेको प्रस्तुत नहीं था।' आप वेदान्ती हो गये हैं यह तो मैं मानता नहीं, नहीं तो गिरनारसे साकेत अधिक आकर्षक न जान पड़ता और सरयूका यह सुधा-सलिल ब्रह्मसूत्रकी सूक्तियोंको भी सरस साकार बनाये बिना छोड़ता है नहीं!'

'मैं अयोध्या तो तभी आ गया था जब तुम गिरनार मिले थे।' उनका कंठ गम्भीर हो चला था। 'लेकिन यह सब तो अभी पिछले वर्षकी बात है, मैं थक चुका था अध्ययन और अन्वेषण दोनोंसे, पढ़नेकी भी हद होती है। यदि पढ़ना किसी निश्चित तत्थ्यके लिए हो उसे बहुत छोटी हद होती है भटकने की।'

'इतना तो मैं भी जानता हूँ कि परिपूर्ण शान्ति प्राय: पराकाष्ठाकी श्रान्तिसे ही आविर्भूत होती है।' मैं भी पूरी बात सुनना चाहता था इसलिए आकुलता अभीष्ट नहीं थी।

'रामनवमीको दर्शन करके लौटा था, बड़ा खेद था, बड़ी निराशा थी, और लगता था सब कुछ समाप्त हो गया।' उनके नेत्रोंमें कुछ आ गया था, वह कुछ जो बिना बोले भी श्रोताको बतला देता है—'अब बोलो मत' और यह आज्ञा अनुलंघनीय होती है। दुखकी परिसीमासे ही सम्भवतः साहसका उद्भव होता है। मैंने श्रीविग्रह, माला और पाठकी पुस्तक उठायी और सरयू किनारे जा खड़ा हुआ। यहाँ श्रीसरयूजीमें कछुओंकी भरमार है। दह होनेसे सिरसे ऊपर तक जल ही है और मैं जानता हूँ कि उन्हें तैरना बिलकुल नहीं आता।

'एक क्षण मैंने देखा पुलिनको, ऊपर नीले आकाशको और फिर सन्मुखके जलको।' वे सहसा चुप हो गये भावने दो क्षणके लिए वाणीपर विजय प्राप्त कर ली।

'भोले बच्चे—पीठपर किसीके हाथका स्पर्श हुआ, मैंने सिर घुमाया। देखा एक वृद्ध महात्मा नेत्रोंसे दया वृष्टि करते खड़े हैं। चरण स्पर्शका भी अवकाश नहीं मिला। उनके संकेतपर विवशकी भाँति मैं उनके पीछे हो लिया।' तनिक रुक कर उन्होंने पुनः प्रारम्भ किया। 'वे कहीं बाहरसे पधारे थे, इस बटके नीचे ही उनका आसन था। अब कुछ अधिक कहने को है नहीं। उन्होंने इस अनधिकारीपर भी कृपा की।'

'वास्तविक बात ही तो अभी अवशेष है' मैंने उनके टपकते नेत्रोंकी उपेक्षा की। यहीं रुक जाना मेरे लिए सम्भव नहीं था।

'अब कहनेको है ही क्या' वे झिझक रहे थे 'अनुभव वाणीपर प्रगट नहीं होता। वह तो वैयक्तिक सम्पत्ति है।'

'जो रहस्य बताया जा सकता है, जो कोई किसीपर अभिव्यक्त कर सकता है, आप उससे मुझे टाल नहीं सकते।' मुझमें आग्रह था और इस आग्रहका अधिकार उनके परिचय तथा व्यवहारने मुझे स्वभावतः दे रखा था।

'रहस्य वही प्रगट कर सकता है जो उसे सुलझा चुका हो। रहस्यके निर्मातासे वह अभिन्न होता है और यह सब निर्माताकी कृपा पर है।'

'आप किसी समयके मेरे ही शब्दोंको दुहरा रहे हैं।' मैं खुलकर हँस पड़ा 'लेकिन मुझपर निर्माताकी कृपा है क्योंकि रहस्य ज्ञाताको उसके ज्ञाता होनेसे भी पूव उसने मेरा सुहृद बनाया है। मैं न तो बाजा बजाऊँगा और न कसरत करनेसे मुझे प्रेम है।

वे खुलकर हँस पड़े और उन्होंने मुझे अपने दोनों हाथोंसे अंक माल दी।

मंगलमूल

सतसंगति मुदमंगल मूला।
सोइ फल सिधि सब साधन फूला ।।

उन्हें यहीं रहना पसन्द है। यद्यपि उन्हें अधिकार है स्वर्ग ब्रह्मलोक या बैकुंठ जब जहाँ चाहें जायें और रहें। उनके लिए सृष्टिके किसी भी प्रदेशमें प्रवेश निषेध नहीं, जब मनमें आता है घूम आते है ! स्वर्गका सिंहासन तथा बैकुण्ठके अधिपति समान रूपसे उनकी स्वागतको समुत्सुक रहते हैं। सभी चाहते हैं उनकी चरण-रज उनके भुवनोंको पवित्र करे। किन्तु उन्हें रहना तो यहीं स्वीकार है।

न कल्प वृक्ष है और न सुधा कुम्भ। गंधर्वोंकी मधुर तंत्री दिशाओंको मुखरित नहीं करती, और न अप्सराओंका ललित लास्य ही वहाँके सौम्य सत्वमें रजसका संचार करता। आप उसे भोग लोक नहीं कह सकते। यों वह कर्म लोक भी नहीं है। एक प्रकाशमय स्थिर शान्ति। महाप्रलयका प्रत्यावर्तन भी उसके सौम्य भावको स्पर्श करनेमें असमर्थ रहा करता है। निम्न लोकोंके आकुल प्राणियोंकी करुण पुकार ही कभी-कभी विक्षोभकी मृदुल लहरी उठा पाती है।

एक ही जीवन--भगवत चर्चा, एक ही भोग-सत्संग, एक ही क्रिया है—चिंतन। अद्भुत है वह तपः लोक,

सब परिपूर्ण हैं, सब आप्तकाम हैं, सब दूसरोंको अपनेसे परम श्रेष्ठ मानते हैं। सब सुनना ही चाहते हैं। अखण्ड अनवच्छिन्न श्रवण। सुनानेमें भी न कोई बहानेबाजी करता न आनाकानी।

'हम लोग सुनते ही सुनते हैं।' अमूर्तने बड़े विनम्र स्वरोंमें जिज्ञासा प्रकट की। 'किन्तु हमें करना क्या चाहिये यह हमने अभी तक नहीं सोचा!' उन तपों मूर्तियोंकी श्रद्धा ही मृदुल उज्ज्वल सिंहासनके रूपमें घनीभूत हो गयी थी, और उसपर पंचवर्षीय चिर-शिशु पूर्वजोंके परम पूर्वज सनतकुमार आसीन थे। जहाँ स्थूल और सूक्ष्मका भेद नहीं होता वहाँ आसन आस्तरण और अधिष्ठाता भाव भेद ही हैं।

'कृतिकी अवशेषताका अनुभव अपूर्णताका परिचायक हैं।' ब्रह्मपुत्र तनिक गम्भीर होकर बोले 'अपूर्णतायें यहाँ प्रवेश नहीं पा सकतीं, किन्तु सर्वेशकी इच्छा अबाध है। कोई नहीं जानता, उनकी किस क्रियामें किस मंगल क्रीड़ाकी पृष्ठि भूमि निर्मित होती है।' श्रोताओंके नेत्र अमूर्तकी ओर घूम चुके थे। आज कुछ होने वाला है। यह सत्संग परम्परा तो नहीं है? किसी अकल्पितके उत्थित होनेकी सम्भावनाने सबको उत्सुक बना दिया था।

'आपको एक बार अपनी उपस्थितिसे पुनः साधन भूमिको सार्थक करना चाहिये।' बिना किसी हलचलके सनतकुमारने आदेश दे दिया और सबने देखा, अमूर्त उस दिव्य लोकसे सूर्य मंडलकी ओर जा रहे हैं।

मृत्युलोकमें पहुँचनेके लिये क्रमशः सूर्य, सोम, वायु मेघ, वृष्टि, औषधिसे होकर ही तो जीव पिता तक पहुँचता है।

× × ×

'राजकुमारने अध्ययन समाप्त कर लिया है!' अर्घके अनन्तर सिंहासनपर बैठते हुए महर्षि देवलने महाराज बृहद्बाहुको सूचित किया 'अलौकिक प्रतिभा समयकी अपेक्षा नहीं करती और राजकुमार कोई अद्वितीय संस्कारी महापुरुष हैं।'

महाराजने समझा था महर्षि बच्चेके किसी अपराधका अभियोग लेकर उपस्थित हुए होंगे। कोई भी आशा नहीं कर सकता था कि उपनयनके पश्चात इन थोड़ेसे महीनोंमें कोई बालक श्रौत शिक्षा समाप्त कर लेगा। महाराजने राजकुमारको गोदमें बैठा लिया उनके नेत्र प्रेमाश्रुओंसे पूर्ण हो चुके थे। इतने विनयशील पुत्रसे अपराधकी आशंका करनी ही उचित नहीं थी।

'मैं शस्त्र शिक्षाका विशेषज्ञ नहीं हूँ। युवराजको कुछ दिनोंके लिए महर्षि विश्वामित्रके श्रीचरणोंमें रहना चाहिये।' कुलगुरु देवलने अपना मन्तव्य प्रगट करते हुए विदा चाही। 'महाराजका मंगल हो' आयुष्मान कुमार परम कल्याण प्राप्त करे।'

'गुरुदेव!' पिताकी गोदसे उठकर उस तेजोमय बालकने महर्षिके श्रीचरणोंपर मस्तक रक्खा। 'शस्त्रशिक्षा संघर्षके लिए, संघर्ष राज्यके लिए होते हैं, और राज्य

होता है, भोगके लिए।' सब जानते हैं, बचपनसे ही राजकुमार खेल-कूद वस्त्राभरण तथा भोजनादिके प्रति उदासीन रहते हैं। इस अद्भुत शिशुमें जैसे अल्हड़ शैशवने प्रवेश पाया ही नहीं, चपल कौमार एवं मादक तारुण्य, जैसे वह बहुत पीछे छोड़ आया है। एक प्रशस्त गाम्भीर्य उसमें सदा रहा है। सदासे उसकी शांति अदम्य रही है, जैसे वह इस जगतसे बहुत ऊपरका किसी दूसरी ही धातुका बना है।

'वत्स' महर्षिने दोनों हाथोंसे उस षट वर्षीय कुमारको उठा लिया, पुचकारा, मस्तकपर हाथ फेरा 'समय आने दो और तब यह तुम्हें शोभा देगा। अभी तुम्हें मर्यादित पथका अनुसरण करना चाहिये।'

'मैं अवज्ञा नहीं करूंगा।' बड़े विनम्र शब्दोंमें राजकुमार कह रहा था 'मैंने श्रीचरणोंसे अध्यन किया है। मृत्यु किसी समयकी अपेक्षा नहीं करती। जिस सुख एवं शाँतिके लिए लोक प्रवृत्ति होती है, वह मुझे भोगोंमें कहीं प्रतीत नहीं होते। यह सब होकर भी मैं आज्ञा पालन करूँगा, जैसे व्रतादिकी आज्ञा, आज्ञा समझकर पालन की जाती है। मुझे कब तक इस अनिच्छित कार्यमें प्रवृत्त रहना होगा ?'

बड़ी विकट समस्या थी, महाराजका एकमात्र पुत्र, साम्राज्यका एकमात्र उत्तराधिकारी वैराग्यके लिए आदेश माँग रहा था। कुलगुरु राजवंशके उच्छेदकी आज्ञा कैसे दें, दूसरी तरफ एक उत्कट विरक्त सच्चा अधिकारी तीव्रतम अभीप्सु ज्ञानकी भिक्षा माँग रहा था। एक महर्षि

कैसे उसे 'न' करदे, कैसे वह उन्हीं भोगोंमें, उसी संसारमें लग जानेकी एक अधिकारीको आज्ञा दे, जिन्हें वह मिथ्या पतनका कारण और आवरक समझता है।

'महाराज' अतंत: महर्षिने निश्चय किया और कातर स्तब्ध राजसभाको भी एक क्षीण आश्वासन मिला 'युवराज अभी कुछ दिन मेरे आश्रममें ही रहेंगे'। महर्षि उठे, युवराजने कमडंल तथा मृगचर्म उठा लिया।

× × ×

'योगका उद्देश्य क्या है?' सायंकालीन हवन समाप्त हो चुका था, धवल ज्योत्स्नामें स्फटिककी शिलापर मृगचर्मके ऊपर महर्षि देवल इस प्रकार आसीन थे, जैसे ब्रह्मचारियोंके सामगान तथा सोम मिश्रित आज्यकी आहुतिसे संतुष्ट अग्निदेव आवहनीय कुण्डसे मूर्तिमान होकर अपने कृष्ण मेषकी पीठपर आ बिराजे हैं। शिष्योंके धूम्राक्त जटा-जाल चरणोंमें क्रमश: अवनत हुए और आज्ञा पाकर बैठ जानेके अनन्तर एकने उस गम्भीर शांतिको जागृत किया।

'आत्म दर्शन-निर्विकल्प समाधि'। वह अखंड शान्ति जैसे शब्दोंमें स्वयं बोल रही हो, महर्षि जानते थे, प्रश्न कर्ता इनसे वञ्चित नहीं हैं। दूसरा उत्तर भी नहीं था। शिष्य जब साधन और योग्यतामें गुरुकी कक्षा-को अतिक्राँत कर लेता है, तब उसका श्रद्धावनत शिष्यत्व इतना महत्तम होता है कि गुरुके लिए उसे वहन करना

शक्य नहीं रह जाता। उसे तो वह गुरुओंका परम गुरु ही सम्हाल सकता है जो शिष्यके लिए प्रत्येक गुरुमें प्रत्यक्ष है।

'एक क्रिया अनुभूति शून्य स्थिति जो तमससे भिन्न है'। प्रश्न कर्ताने स्पष्टीकरण किया 'अनन्त आनन्द अविरल शांति कहाँ है वहाँ और यदि हो भी तो अनुभूतिके अभावमें क्या उपयोग। साधनोंका पर्यवसान यहीं होता है, ऐसा हृदय नहीं स्वीकार करता। इस स्थितिको उत्थानहीन एवम् शाश्वत बनाये रखना एक और समस्या है।'

'बाल रिषि' राजकुमार अब महर्षि देवलके आश्रममें इसी नामसे पुकारा जाता है। आश्रम वासियोंकी उसके प्रति अपार आदर भावना है। यद्यपि वह युवक है है किन्तु उसकी प्रकाण्ड प्रतिभा एवम् नैसर्गिक साधन सम्पत्ति महर्षिको भी संकुचित करती है उसका प्रणिपात स्वीकार करनेमें। 'संसारकी कर्म भूमिमें जीवन वृक्षकी अवस्थिति साधन सुमनोंका प्राकट्य करके ही परिपूर्ण होती है। ज्ञान और समाज यही इन सुमनोंके सौरभ और मधु हैं। मकरन्द और परागकी उपलब्धि ही सुमनकी सम्पूर्णता है।'

'सुमनकी पूर्णता सौन्दर्य और आकर्षणमें स्वीकार करता हूँ। साधनोंमें आकर्षण रुचि और परिपक्वता समाधि तक ठीक है'। प्रश्नकर्ता पूर्ववत गम्भीर था 'सुमनकी पूर्णता ही तरुकी पूर्णता नहीं है, वह फलका अग्रचर्यामात्र है, और तरुकी सार्थकता फलमें ही है।

भले वह सुरभित और मधुमय न हो ; किन्तु सुरभि और मधु उसके निर्माणके उपादान मात्र हैं।'

'सच्ची बात तो यह है कि प्रश्न मेरी शक्ति सीमाकी परिधिमें नहीं है।' महर्षिने बिना किसी संकोचके कह दिया।' फिर भी मैं प्रयत्न करूँगा कि तुम्हें समाधान मिले और वह कल मध्याह्नसे पूर्व।'

× × ×

जिनके हृदय वासनाओंकी कालिमासे कभी कलुषित नहीं हुए, जिनके संकल्पपर अविश्वासकी अन्धी छाया नहीं पड़ती, जिनकी भावना विकारोंकी वात्यामें भ्रान्त नहीं होती उनके आह्वान असफल हो नहीं सकते। महर्षि देवलने प्रातः हवनके अनन्तर भगवान भाष्करको अर्घ देकर जब दूसरा अर्घ पात्र अपने दोनों हाथोंमें सम्हाला शिष्य वर्गने समझ लिया आज उन्हें किसी उर्ध्व लोक-वासी महत्तम्के स्वागतका सौभाग्य प्राप्त होना है। वे आतुरता पूर्वक आसन पाद्य एवम् पुष्पोंके प्रणयनमें लग गये।

महर्षिने अपने भाव भरे नेत्र ऊपर उठाये। नैनोंकी मूक प्रार्थना क्षितिज सूर्य मंडल शून्यको पार करती कहाँ तक जा रही थी कौन कुछ जाने। कुछ ही क्षणोंमें सारा बन प्रान्त अद्भुत सुरभिसे झूम उठा और महर्षिने आकाशसे उतरते हुए सहस्र-सहस्र सूर्योंके समान आलोक मंडलको मस्तक झुकाया।

अशोकके नीचे उसी स्फटिक वेदिकापर किसलय एवम् सुमनोंके आसनको सनकादि कुमारोंने भूषित किया। महर्षिकी पूजा सार्थक हुई। शिष्योंके संदेह उनके दर्शनसे ही उच्छिन्न हो गये। आदेश पाकर सब बैठ चुके थे।

महर्षिको कुछ पूछनेका अवकाश नहीं मिला कुमारोंने स्वयम् भगवानकी चर्चा प्रारम्भ कर दी और श्रोताओंकी तन्मयता भंग न होती यदि वे स्वयं मध्यान्ह संध्याके लिए जाना न चाहते।

'वत्स' महर्षिने अपने शिष्यकी ओर देखा।

'यही तो फल है। यहीं तो आनन्दकी अनुभूति है।' प्रांजलि राजकुमार भरे नेत्रों बोल रहे थे। 'सत्संग ही साधन सुमनोंका फल है। मुझे मेरा समाधान प्राप्त हो गया।'

'और अब तुम्हें अखंड सत्संगमें हमें कुछ करना भी चाहिये यह आकुलता न होगी'। सनतकुमारके वचनोंने एक प्रगाढ़ यवनिका उठादी। 'आवश्यकता नहीं कि अब तुम कर्म भूमिमें कुछ और करनेका अन्वेषण करो।"

महर्षि देवलने देखा, उनका बालऋषि सशरीर ब्रह्म-कुमारोंके साथ क्षितिजकी ओर चला जा रहा है। आश्चर्य पर विजय पानेके लिए उन्होंने ध्यान किया और जब उठे, शिष्योंको बताया, वे महर्षि अमूर्त थे।

★

शठ-सुधार

सठ सुधरहिं सतसंगति पाई ।
पारस परस कुधातु सुहाई ।।

'चम्पापुरी कौन जायगा ?' आचार्य धर्मपादके आश्रममें प्रत्येक अन्तेवासीके सम्मुख आज यह प्रश्न है। आचार्यपादने कल सायंकालीन सन्ध्या समाप्त करनेके पश्चात् ही सूचित कर दिया था कि चम्पकपुरीका राज-पुरुष सबेरे प्रतीक्षा करेगा। मध्याह्नोत्तर प्रस्थानका समय है और अबतक निश्चय नहीं हो सका कि यह गौरव किसे प्राप्त होगा।

आचार्य धर्मपादके आश्रमका कोई भी छात्र किसी शासकके मार्ग-निर्देश करनेकी योग्यता रखता है; किन्तु कुछ ऐसे ब्रह्मचारी हैं जो गुरुदेवके श्रीचरणोंसे पृथक होना नहीं चाहते। कुछने नैष्ठिक रूपसे आश्रम-वास स्वीकार किया है। जिनका अध्ययन समाप्त नहीं हुआ, उनके लिए तो कोई प्रश्न ही नहीं है। सबसे मुख्य बात यह है कि इस समय चम्पकपुरीका नागरिक समुदाय अनेक कारणोंसे तर्कशील होकर सनातन सदाचार पथसे अस्त-व्यस्त हो रहा है। महाराज चाहते हैं कि राजगुरुके पदपर जिन पावन पदोंकी प्रतिष्ठा हो, उनका शील एवं तप लोगोंमें सात्विकता एवं श्रद्धाका संचार करे। बात

ठीक भी है, धर्मका पालन केवल भयसे ही कब तक होगा ! उसका स्थान तो अन्तरमें होना चाहिए। नम्रताके ये मूर्तिमान स्वरूप छात्र — इनके मनमें ही नहीं आता कि उनके संयम, तपने उनके संकल्पमें वह शक्ति दे दी है कि राजगुरु पदपर रहना तो दूर वे यहाँ से केवल सोच लें तो सम्पूर्ण अव्यवस्था दूर हो जाय। अधर्म तथा उसके परिकर अधिष्ठाता देवताओंमें इतना साहस ही नहीं है कि वे इन तपो मूर्तियोंके संकल्पक्षेत्रकी ओर दृष्टिपात भी करें।

'आचार्य चरण जिसे आज्ञा दें……' बात तो इतनी निश्चित है कि उसमें सोचने समझनेको कुछ रह ही नहीं जाता। गुरुदेव जिसे आज्ञा देंगे, उसे जाना ही पड़ेगा। उसकी योग्यता एवं शक्तिका प्रश्न ही कहाँ रह जाता है तब। गुरुदेवकी आज्ञा, उनका आशीर्वाद—वे सर्व समर्थ आज्ञा दे दें तो एक शिशु चम्पकपुरी तो क्या देवधानीके अधीश्वर देवराज इन्द्रका भी उपदेष्टा बन जायगा। लेकिन गुरुदेव आज्ञा किसे देंगे ? असमंजस, संकोच हिचक और इसलिए भी यह सब कि प्रथम बार गुरुदेवने किसी-को आज्ञा न देकर छात्रोंपर यह बात छोड़ दी है कि वे स्वयं निश्चय करें।

'आचार्य पाद अश्वत्थ मूलमें वेदिकापर आसीन हो गये हैं और आप सबकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।' हरीत ही गुरुदेवका सबसे प्रिय शिष्य है। वह है भी आश्रममें सबसे अल्पवयस्क, सबसे चपल, सबकी सेवामें पटु और सबका स्नेह पात्र। सबको ढूंढ़-ढूंढ़ कर वह सन्देश सुना आया।

दिनका प्रथम प्रहर व्यतीत हो चुका। दिशाएँ वेद मन्त्रोंके सस्वर पाठसे पवित्र हुईं और हवनका सुरभित धूम्र तो अब भी गगनमें कुण्डलियाँ बनाता उठ रहा है। अश्वत्थकी अरुण मृदुल कोपलोंकी छायामें वेदिकापर जैसे मूर्तिमान अग्नि देव विराजमान हैं और अब उनके चारों ओर ये वल्कलधारी, धूमिल रूक्ष अलकोंवाले युवकोंके रूपमें मानों नम्रता, शील, सत्य, रूप, त्याग आदि सद्गुण ही एकत्र हो गये हैं।

'ब्राह्मणका तप एवं त्याग इसीलिए है कि उससे विश्वको अभय तथा शान्तिका बरदान प्राप्त हो।' आचार्य चरणने एक बार देख भर लिया अन्तेवासियोंकी ओर और फिर उनका घन गम्भीर स्वर दिशाओंके साथ श्रवणोंको पवित्र करने लगा। 'तर्क मनकी चंचलताकी ही एक मोहक विकृति है और श्रद्धा हैं जगन्नियन्ताका मङ्गलवरदान। तर्कका मायाजाल मानवका मन अपने प्रमाद एवं दोषको समर्थन देनेके लिए फैलता है। इसका परिणाम है असंयम; जिसका फल अशान्ति एवं क्लेश है। ब्राह्मण अपने त्याग, तप एवं आचरणसे माया मुग्ध मानवके मनका तर्क जाल छिन्न करके उसमें श्रद्धा—आस्थाका अमर प्रकाश प्रदीप्त करता है।'

आचार्य धर्म पादके साथ जैसे आश्रमके सब चर-अचर मूक हो गये। वायु तकके पद अलस हो उठे। निःशब्द शान्ति और उसमें एक अद्भुत संकोच पूर्ण अव्यक्त भाव। अन्तेवासियोंने मस्तक झुका लिये थे। वे कर्तव्यनिष्ठ विप्र

नहीं हैं, यह कहनेका साहस तो स्वयं धर्मराजमें भी नहीं हो सकता, किन्तु वे नम्रताके स्वरूप !

'चम्पकपुरीनरेश बहुत खिन्न हैं। पुत्रके समान प्रिय प्रजाका अस्त-व्यस्त भाव किसे खिन्न नहीं करेगा ! उन्हें एक विप्र चाहिये। तुममें-से कौन उन अभीप्सुको आशीर्वाद देगा ?' आचार्यने दृष्टि चारों ओर घुमायी।

'हममें जो कुछ भी है, वह श्रीचरणोंका प्रसाद ही है। हमारे पास अपनी तो त्रुटियाँ, प्रमाद एवं क्षुद्रता ही है।' बन्धु वर्गके संकोचका भार बड़े ही उठाते हैं। नैष्ठिक व्रती सत्यसंघजीने सबको प्रसन्न कर दिया। बड़ी नम्रतासे अंजलि बांधे वे खड़े हो गये—'श्रीचरण ही आशीर्वाद दे सकते हैं महाराजको। उस आशीर्वादका वहन करनेकी जिसे आज्ञा होगी, उसकी योग्यताका प्रश्न ही कहाँ रह जाता है।'

'राजपुरुषको यहीं बुलालो।' जैसे आचार्यने कुछ स्थिर कर लिया। हारीतको तो सन्देश सुनानेका संकेत मिलना चाहिये।

× × ×

'आचार्य अभय चम्पक पुरीके राजगुरुका आसन भूषित करेंगे !' राज पुरुषने आकर प्रणिपात किया आचार्य धर्मपादके श्रीचरणोंमें और जैसे ही वह अंजलि बांधकर खड़ा हुआ, आचार्यने अपना निर्णय सुना दिया।

'अभय !' राज पुरुष नाम सुनकर ही चौंका और जब उसने निर्दिष्ट आचार्य अभयको देखा, उसका मुख सूख गया।

'अभय !' सभी ब्रह्मचारी चौंके। उन्हें अपने गुरुदेवके इस निश्चयका अनुमान भी नहीं हो सकता था। यह अभय ब्राह्मण है, यह बात तो उसके द्वारा सबको ज्ञात है; किन्तु यह गुरुदेवका न तो छात्र है न ब्रह्मचारी ही। इसने तो कुछ दिन हुए जब नियमित संन्ध्या प्रारम्भ की है। क्या हुआ जो वह प्रतिभा सम्पन्न है, इसमें त्याग एवं तप भी हैं, यह तो सोचा ही नहीं जा सकता।

'अभय !' ब्रह्मचारियोंको स्मरण है कि जब यह अभय आश्रममें आया, इसका शरीर मलिन हो रहा था। इसके वस्त्र फटे थे। केश रूक्ष एवं अस्त व्यस्त थे। गुरुदेवने सबको मना कर दिया परिचय पूछनेके लिए; किन्तु इसका प्रमाद, इसका औधत्य, इसका कठोर शरीर—सब ऐसा लगता था, जैसे यह कोई दस्यु हो।

'अभय !' यह अभय धीरे-धीरे बड़ा विनम्र हो गया। इसका कंठ बड़ा मधुर है और बड़ी उत्तम प्रतिभा है इसकी। यह बड़े मोहक स्वरसे श्रीरामचरितका गान करता है। गुरुदेवने इसे यहीं आदेश दिया है। बड़ी भव्य व्याख्या करता है यह उसकी। 'शरीरमें शक्ति है, बुद्धिमें योग्यता है, स्वभावमें नम्रता है।' ब्रह्मचारियोंने अपना समाधान कर लिया। जब स्वयं आचार्यपादने आदेश दिया तो इसमें भ्रमको स्थान हो कैसे सकता है।

श्रद्धाके स्वरूप ब्रह्मचारीगण आश्वस्त हो जायँ, आचार्य पादकी शक्ति एवं सम्मानसे प्रभावित राज पुरुष मस्तक झुकाकर अपनेको किसी प्रकार प्रस्तुत करले, किन्तु अभय तो जानता है कि वह क्या है। वह कैसे अपने को भूल जाय। वह उठा और आर्तभावसे गुरुदेवके चरणोंपर गिर पड़ा। क्रन्दन करता रहा, वह।

'मेरे बच्चे!' वह अमरोंको भी अभय देनेवाला वरद कर मस्तकपर घूम रहा था और आचार्यकी वाणीमें अपार वात्सल्य था—'तुम इतने कातर क्यों हो रहे हो। तुम चम्पकपुरीके लोगोंके शील, स्वभाव, विचार शैलीसे परिचित हो। मनुष्यको अपने कृतका परिमार्जन करनेको सदा प्रस्तुत रहना चाहिये। जब एक अपना सुधार कर लेता है, उसका उज्वल आदर्श दूसरोंके हृदयको प्रकाशित कर देता है। संगका प्रभाव सबपर पड़ता है। संग-दोषकी विकृतिका परिष्कार भी संग ही तो होगा।' कौन जाने ये परोक्षप्रिय महापुरुष कब कैसी पहेलियाँ कहने लगते हैं।

'मैंने भयवश ही यहाँ आश्रय लिया था, यह तो ठीक है; किन्तु श्रीचरणोंके सान्निध्यने अब इस हीन हृदयमें इतनी शक्ति दे दी है कि गुरुदेवके आदेशसे प्रायश्चितका वह स्वागत कर सके!' अभयने अपनेको स्थिर कर लिया।

'सो कुछ नहीं!' आचार्यकी वाणीमें आश्वासन और आशीर्वाद दोनों थे—'तुम्हें प्रायश्चितके साथ परिमार्जन करना है और सच्चा प्रायश्चित तो है पश्चाताप! उसे जहाँ भी तुम जागृत कर दोगे, वही हृदय परिशुद्ध हो

जायगा।' यह उपदेश था नवीन राजगुरुके लिए या और कुछ, कौन कह सकता है।

'आचार्य अभयके यात्राकी व्यवस्था तुमने करली होगी!' राज पुरुषने केवल मस्तक झुका कर स्वीकृति सूचित की। अभयने पुनः मस्तक रखा गुरुदेवके पदोंमें। उन्हें आशीर्वादके साथ जो ब्रह्मचारियोंका सौहार्द्र भरा सन्देश एवं अनुगमन मिला, वह प्रसन्न कर सका या नहीं, यह कहना कठिन ही है। कहा इतना ही जा सकता है कि उन्होंने अपनेको स्थिर रखा और किसी प्रकार विदा हुए आश्रमसे।

× × ×

'महाराज, न मैं आपका पूज्य हूँ और न प्रणम्य!' अभयने अपना कर्तव्य मार्गमें स्थिर कर लिया था। चम्पकपुरी नरेशने जैसे ही प्रणिपातका उपक्रम किया, उसने उन्हें रोक देना चाहा।

'आप मेरे लिए परम वन्दनीय गुरु हैं!' नरेशने प्रणिपात किया। उन्होंने इसकी ओर ध्यान ही नहीं दिया कि नवीन आचार्य संकोचसे पीछे हट गये हैं दो पद। साष्टांग प्रणिपातके अनन्तर अर्घ्य अर्पित करके तब हाथ जोड़कर महाराजने प्रार्थना की—'श्रीचरण आसनको पवित्र करें!' पाद-प्रक्षालनके लिए जलपूर्ण स्वर्णपात्र लिये स्वयं महारानी उपस्थित हो चुकी थीं।

'राजन् आपने मुझे पहिचाना नहीं।' अभय स्थिर खड़े रहे ज्यों-के-त्यों।

'विश्ववन्द्य आचार्य धर्मपादके कृपा पात्र, उनके आशीर्वादके पावन प्रतीक पुण्यधन महापुरुषको पहिचान सकने जितनी शक्ति इस क्षुद्रमें नहीं है !' महाराजने हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया। उनके सुन्दर मुखपर श्रद्धाके गाम्भीर्यके साथ मन्दस्मित स्पष्ट लक्षित हो रहा था। वे कहते गये—'यह जन तो अपने आचार्यकी चरण सेवा करके अपनेको कृतार्थ करनेकी कामना करता है।'

'महाराज, आपके सम्मुख कुख्यात लम्पट तस्कर अभय खड़ा है। मैं अपने योग्य दण्डके लिए प्रस्तुत होकर आया हूँ।' एक बार महारानीने चौंककर मुख ऊपर किया इन वाक्योंको सुनते ही और दूसरे ही क्षण वे पुनः श्रद्धा-वनत हो गयीं।

'अपने राजगुरुसे यह क्षत्रवन्धु कृपा एवं आशीर्वादकी ही आशा करता है।' नरेशने बड़ी दीनतासे मस्तक झुकाया। उनके स्वरमें दृढ़ निश्चय एवं सत्यका ओज था—'दस्यु श्रेष्ठ अभयको भूल जाना सम्भव नहीं है और जिसके नेत्र इतना पहिचाननेमें भी प्रमाद करें, वह क्या शासक होने योग्य है? लेकिन गुरुदेव, जब कुत्सित लौह पारसका स्पर्श पाकर स्वर्ण बन जाता है, उसकी पूर्वाकृति तो कोई अर्थ ही नहीं रखती। उसे आभूषण बनानेको उत्सुक न हो, ऐसा बुद्धि हीन कौन बनना चाहेगा। मैं तो परम भाग्यशाली हूँ। महत्पुरुष तो अपने संगसे स्वर्ण नहीं, पारस बना दिया करते हैं औरोंको, और मुझे अपने आचार्यके आसनपर ऐसे ही एक पारसका पूजन करनेका सुअवसर मिला है !

'मेरे पूर्वके अपराध ऐसे नहीं, जिन्हें क्षमा किया जा सके।' अभयको महाराजकी श्रद्धापर आश्चर्य हो रहा था। ये देवोपम नरेश—जान-बूझ कर, पहिचान कर भी ये इस अधमको आचार्य मानते जा रहे हैं!

'जब कोई तपोधन अपने वरद हस्तसे किसीके मस्तकका स्पर्श कर देते हैं, संयमिनी पति दण्ड-पाणि धर्मराजमें भी साहस नहीं रह जाता उसके पूर्वापराधों पर विचार करनेका।' महाराजका निश्चय भ्रान्तिहीन था—'अब विकृतियोंका परिमार्जन तो आचार्य चरण करेंगे। यह जन तो केवल आज्ञानुवर्ती है।'

आचार्य धर्मपादके विदा होते समयके आदेश अभयके अन्तरमें स्पष्ट हो गये। 'प्रायश्चित नहीं, परिमार्जन। अन्ततः उसीके अनुगामियोंके प्रभावसे तो चम्पकपुरीमें यह अश्रद्धा एवं अव्यवस्था फैली है। उसे परिमार्जन करना है उसका। आश्रमकी ओर मुख करके आचार्य धर्मपादके लिए वहीं भूमिमें मस्तक रखा उसने।

निर्लिप्त

बिधि बस सुजन कुसंगति परहीं।
फनि मनि सम निज गुन अनुसरहीं ॥

'तुम हम लोगों के साथ रहो तो हम तुम्हारे लिए सब व्यवस्था कर देंगे।' आगन्तुकके स्वर एवं उसके एक तारेकी लयपर वह आकर्षित हुआ था या आगन्तुकके सुगठित शरीरने उसे प्रभावित किया था, यह कहना कठिन है; किन्तु इतना निश्चित कहा जा सकता है कि यह दयाका भाव नहीं था। उसके कठोर हृदयने कभी किसी कोमल भावको स्थान ही नहीं दिया। वह जब भी कहीं पिघलता है, अपने स्वार्थके ही कारण।

अब तो भाग्यने ही मुझे आप लोगोंके पास पहुँचा दिया है। भटकते-भटकते मैं थक गया हूँ।' आगन्तुकका शरीर ही इस बातका प्रमाण है। पैरके चर्म क्षत-विक्षत हो गये हें, शरीर सूखकर कङ्काल-सा हो गया है। कितना भी दृढ़ शरीर हो, कोई कहाँ तक सबल रह सकता है। लगभग एक महीनेसे उसके पेटमें जलके अतिरिक्त कुछ नहीं गया। आज यहाँ पहुँचते-पहुँचते वह गिरकर मूर्छित ही हो गया। अब उसे आश्रय देने वाले ये लोग कोई भी हों, कैसे भी हों, इन्हीं लोगोंने उसे जीवन दिया है। दूधकी कुछ घूटें कण्ठके नीचे उतर जानेपर ही वह बोलने योग्य हुआ है।

'अच्छी बात है, लेकिन यह स्मरण रखना कि भागनेका प्रयत्न किया अथवा हमारे विषयमें किसीसे बाहर कुछ कानाफुसी की तो मैं क्षमा करना नहीं जानता। मेरे क्रोधकी यन्त्रणा तुम्हारे लिए यहाँ किसी भी नरकसे अधिक भयंकर निकलेगी।' दस्युओंके दलपतिसे और कोई क्या आशा कर सकता है। एक मुमुर्षु-प्राय: प्राणीको शरण देते समय भी इतनी सूचना देना वहाँ सामान्य आवश्यक कार्य समझा ही जाना था।

'मैं अब भागकर कहाँ जाऊँगा। मेरा संसारमें है ही कौन। जिन्होंने मुझे मृत्युके मुखमें पड़ेको जीवित किया है, उनके साथ विश्वासघात करनेकी बात भी सोचनेसे तो मर ही जाना अच्छा है!' आगन्तुकके नेत्र सजल हो गये। देशमें अकाल है। घरपर उसके रहते, उसके देखते-देखते भूखकी ज्वालामें उसका बच्चा और पत्नी स्वाहा हो गयीं। जब पत्ते, वृक्षोंकी छाल तथा तिनकोंके लिए भी लोग परस्पर मारपीट तक करने लगें, एक झोपड़ी और कुछ भूमिका मोह क्या अर्थ रखता है। फिर किसके लिए अब वह उस स्थानमें आसक्त बनता। जिधर पैर बढ़े, चल पड़ा। सोचा था कि वनमें या तो वनपशु उसे आहार बनाकर विपत्तिसे छुड़ा देंगे या कुछ पत्ते ही मिल जायेंगे पेटके गढ्डेको पाटनेके लिए। दुर्भाग्य आगे-आगे चलता है। वनमें आजकल पत्तेका नाम नहीं! वृक्षोंके कङ्काल खड़े हैं। पता नहीं दावाग्निने यह दशा की या दुर्दैवने। वह भटकता बढ़ता आया। हरियाली देखकर कितना हर्ष हुआ था उसे, आप इसका

अनुमान नहीं कर सकेंगे। लेकिन जब वह पहुँचा हरित तरुओंके समीप—मूर्छित होकर गिर पड़ा।

'अभी तुम विश्राम करो! आज तुम्हें केवल दूधपर रहना चाहिये। कल अन्न मिलेगा। एक सप्ताहमें स्वस्थ हो जाओगे।' दस्यु-प्रमुखने एक साथीकी ओर सङ्केत किया। सघन वृक्षोंकी छायामें पत्तोंपर एक दरी मिल गयी बिछानेको। दीर्घकालके बुभुक्षितको सहसा कोई आहार मिलेगा तो उसपर भूखे बाघकी भाँति टूट पड़ेगा वह। लेकिन उसकी सूखी आतें फट जायेंगी और यह उसका अन्तिम भोजन होगा—इस बातसे दस्यु असावधान नहीं थे। आगन्तुकके पास न जल रखा गया, न दूध। उसे कुछ देरके अन्तरसे जल तथा दूध मिलते रहनेकी व्यवस्था कर दी उन्होंने।

'भगवान कितने दयामय हैं!' शीतल जल, सद्यः शक्तिदायी दूध शरीरमें पहुँचा। महीनोंसे जिसे पत्ते तक दुर्लभ रहे हों, उसे कितनी शांति मिली होगी। वह दरीपर नेत्र बन्द करके पड़ा था। 'प्रभुने पता नहीं क्यों इस अधमको जीवित रहने दिगा।' इस समय अपने आश्रयदाताओंके सम्बन्धमें सोचने योग्य मनःस्थिति उसकी नहीं थी। कब वह सो गया, यह कैसे पता लगता उसे।

× × ×

'हमें इससे कोई सम्बन्ध नहीं कि तुम कौन हो, कहाँके हो, किस जातिके हो!' आगन्तुकको कई दिन तीव्र ज्वर आया यहाँ। उसका उपचार हुआ। अब वह

स्वस्थ हो गया है। सामान्यतः घूम-फिर सकता है। उसके ये भीमकाय, उग्र आकृति, कठोर मुख, बड़ी-बड़ी दाढ़ी-मूछों वाले आश्रयदाता सज्जन पुरुष नहीं हैं, यह अब समझ गया है वह। लेकिन इन लोगोंने उससे परिचय तक नहीं पूछा, यह आश्चर्यकी बात है। आज जब वह दल-प्रमुखके पास गया परस्पर परिचय करने तो प्रमुखने रूक्षतासे उसे बताया—'हमारे यहाँ जाति आदिका कोई महत्व नहीं। तुम्हारे अब कोई संसारमें नहीं है, इससे तुम और अधिक उपयोगी हो हमारे लिए। तुम्हें अब काम करना चाहिये। तुम्हारे कामका पूरा भाग मिलेगा तुम्हें और उसे तुम चाहे जैसे व्यय कर सकते हो। केवल इतनी सावधानी रखनी चाहिये कि यहाँ किसीको कभी न लाना। यहाँका पता मत देना और यदि आगे चलकर कुछ पीने लगो तो कभी ऐसी अवस्थामें इधर आनेका साहस मत करना, जब तुम्हारी असावधानीमें कोई तुम्हारा पीछा कर सके।'

'मुझे तो केवल भरपेट सात्त्विक भोजन चाहिये। बड़ी अद्भुत लगीं उसे ये सूचनाएँ। 'मैं यथाशक्ति आप लोगोंकी सेवा करूँगा। थोड़ी देर मुझे नित्य अपने प्रभुके स्मरणमें लगता है, जब शरीर स्मरणके योग्य होता है। मुझे किसी मादक वस्तुका अभ्यास नहीं और न धनका मुझे कोई लोभ है।' बड़ी ही सरलतासे उसने अपनी भावना व्यक्त कर दी।

'अभी तुम बहुत सीधे हो।' दल-प्रमुख खुल कर हँस पड़ा। 'अच्छी बात, काममें लगो! आगेकी बात आगे

देखी जायगी। तुम अपना एकतारा बजाना दोपहरीमें कर लिया करो, बस इतना ही अभी पर्याप्त है। सवेरे, शामको या रात्रिमें इधर कोई भूला-भटका आवे तो एकतारेकी झंकार उसे आकर्षित करेगी।

उसे कोई आपत्ति नहीं हुई इस आदेशको माननेमें। अवश्य ही उसका हृदय आशंकाओंसे पूर्ण हो गया। यहाँ आ फँसनेकी अपेक्षा तो मृत्यु बहुत अच्छी थी। लेकिन अब तो प्रारब्धने ही ला पटका है उसे इन दस्युओंके मध्यमें।

× × ×

'तुम अब तक क्या कर रहे थे? क्या ले आये तुम अपने साथ?' दल-प्रमुखने एक यात्रासे लौटकर पर्याप्त समय प्रतीक्षा की है। सब साथी निश्चित स्थानपर आ गये। नवीन व्यक्तिके न पहुँचनेसे उनका चिन्तित होना स्वाभाविक था। प्रमुखका रोष तब और भी बढ़ गया, जब उसने नवीन साथीको खाली हाथ आते देखा।

'मुझे पूरी आशा है कि मेरी बात सुनकर आप मुझे क्षमा कर देंगे!' नवीन पुरुषने बड़ी नम्रतासे प्रार्थना की। 'मैंने उस स्थानपर जहाँ स्थित रहनेको आपने मुझे आज्ञा दी थी, खड़े-खड़े ही एक बहुत कातर ध्वनि सुनी। इतनी करुण थी कि उसे सुनकर वहाँ न जाना तो निष्ठुरता होती। किसी क्रूरने एक अच्छे सुन्दर युवकको आहत कर दिया था। मेरे पहुँचने तक वह युवक मूर्छित हो चुका था। मैं उसके सामान्य उपचारमें लग गया।

उसे एक स्थानपर सुरक्षित रख आया हूँ। अब भी वह चेतनामें नहीं आया है। आघात बहुत····।'

'बको मत !' दस्यु-प्रमुख चिल्ला पड़ा। इस प्रकारकी बातें सुनना उसकी शक्तिसे बाहर था। 'हम लोग वहाँ दया दिखाने नहीं गये थे। वहाँ गये थे धन लेने और जो हमारे मार्गमें बाधा दे, उसे ठिकाने लगा देना हमारा कर्तव्य था।'

'दूसरेका धन उसकी इच्छाके बिना हरण करना और निरपराधको मारना····!' वह सीधा सरल पुरुष अपनी बात अपने ही ढंगसे कह रहा था।

'पाप है—यही तो तुम कहना चाहते हो ?' दस्युने नेत्रोंमें विष एकत्र करके व्यंग किया—'पाप और पुण्य नगरोंमें रहने वालोंके समीप रहते हैं। यहाँ यह ढकोसला नहीं चल सकता। यहाँ एक ही पुण्य है धन एकत्र करना !'

'अभी वह बेचारा मूर्छित पड़ा है। आप मुझे आज्ञा दें कि उसकी कुछ ठीक व्यवस्था कर आऊँ।' यह अवसर इस योग्य नहीं था कि दस्युसे विवाद करनेमें समय नष्ट किया जाय। विवाद करनेसे कोई लाभ हो, इसकी आशा भी नहीं थी। कर्तव्यकी पुकार थी सेवाके स्थानपर शीघ्र पहुँचने की।

'अब उसके जीने या मरनेसे हमारा कोई हानि-लाभ नहीं।' दस्यु-प्रमुख पता नहीं क्यों इस अत्यन्त विनम्र नवीन पुरुषकी उपेक्षा नहीं कर पाता। इस सीधे व्यक्तिके साथ कठोर होना उसे भी कठिन जान पड़ता है। उसने

अनुमति दे दी—'यदि तुम्हें यह मूर्खता करनी ही है तो जा सकते हो। लेकिन उसे न तुम यहाँ ला सकते हो और न अपना, हम लोगोंका तथा हमारे आवासका कोई परिचय ही दे सकते हो।'

'मैं आज्ञाका पालन करूँगा।' वह शीघ्रतापूर्वक चला गया। दस्युओंने एक दूसरेकी ओर देखा किसी भाव से; लेकिन आशङ्काका कोई कारण नहीं था।

× × ×

'वह किसी यात्रामें हमारा साथ नहीं देता!' आज दस्युदल एकान्त काननमें एकत्र हुआ था। दस्यु-प्रमुखने इस बार जिस नवीन व्यक्तिको शरण दी है, उसे लेकर दलमें एक झमेला खड़ा हो गया है।

'हम सब जानते हैं कि हमारी यात्रामें उसे लेजाना केवल व्यर्थ ही नहीं, आशङ्का जनक भी है।' प्रमुखकी बातमें दो मत नहीं हो सकते। जो दूसरेका धन उसकी अनुमतिके बिना लेनेको किसी प्रकार प्रस्तुत नहीं, जो असावधान लोगोंपर आक्रमणको अन्याय मानता है, जो प्रत्येक आहतकी सेवाके लिए अपने प्राण भी सङ्कटमें डालनेको उद्यत रहता है, वह भला दस्युओंकी यात्रा जो ठीक अर्थमें डकैती है, उसमें साथ जाकर उनकी कठिनाई बढ़ावे और आशङ्काका का कारण हो, इससे अधिक और क्या हो सकता है।

'हम अपने प्राण-संकटमें डालकर उपार्जन करें और वह बैठा-बैठा एकतारा बजाया करे!' एक दस्युने अपनी ईर्षा व्यक्त की।

'दलके नियमानुसार कोई कभी भी यात्रामें साथ जाना अस्वीकार कर सकता है। हम सब इस विषयमें स्वतन्त्र हैं।' प्रमुखने स्थिर कण्ठसे कहा—'यात्रासे प्राप्त धनका भाग साथ न जानेवाले को नहीं मिलता। उसने कोई भाग लेना अस्वीकार कर ही दिया है। अपने साथ हमारे लिए भी वह फल एकत्र रखता है। थोड़ा-सा अन्न लगता है उसपर और आजसे वह मेरे निजी भागमें-से लगेगा।'

'वह दो रोटीके टुकड़े खा लेता है, इसलिए हम कोई विवाद उठावें, इतना ओछा हममें-से कोई नहीं है।' दस्युओंमें-से एक तरुण बोला—'विवाद तो यह है कि ऐसा व्यक्ति दलमें क्यों रहे, जिसे यात्रामें कभी भी साथ नहीं देना है।'

'उसे कह देनेपर वह अभी चला जायगा और इतना सच्चा है वह कि हमें उससे तब भी कोई आशङ्का नहीं हो सकती।' प्रमुखने इस बार अपने हृदयकी बात स्पष्ट कर दी—'लेकिन हमें संयोगवश एक ऐसा व्यक्ति मिला है, जो हमारे साथ रहकर भी हमारे सारे दुर्गुणोंसे अछूता रहता है। जिसे डराकर, लोभ देकर, किसी प्रकार हम अपने किसी कुकार्यमें साथी नहीं पाते। हमने धर्मात्माओं एवं सज्जनोंकी बातें बहुत सुनी हैं, पर हमें पहिली बार ऐसा मनुष्य मिला है जो सन्त है या नहीं, यह भले न कहा जा सके, पर यह निश्चित है कि वह सज्जन है। क्या हम इस अकालके समय उसे भूखों मरनेके लिए फिर निकाल दें?'

दस्युओंकी बैठक बिना कोई उत्तर दिये समाप्त हो गयी। प्रबलतर अधर्म भी सच्चाईसे भरे धर्मका तिरस्कार करनेका साहस जो नहीं रखता।

अपार महिमा

विधि हरि हर कवि कोविद बानी।
कहत साधु महिमा सकुचानी ॥
सो मोसन कहि जात न कैसे।
साक बनिक मनि गुन गन जैसे ॥

'भगवन्, सन्तोंके लक्षण तो मैंने आपके मुखसे अनेक बार सुने हैं, आज उनका माहात्म्य सुनना चाहता हूँ।' देवर्षि नारद हाथ जोड़कर ब्रह्माजीके सम्मुख खड़े हो गये। उन्होंने अपने पिताकी स्तुति की "आप सर्वज्ञ हैं। जो कुछ कहीं भी प्रगट या गुप्त है, उसे आप जानते हैं। आप ही रहस्यवेत्ता, सच्चे कवि तथा तत्ववेत्ता वास्तविक कोविद हैं। श्रुतियाँ आपको इसीसे 'कविःस्वयम्भू' कहती हैं। आज आप अपनी मङ्गल वाणीसे मुझे कृतार्थ करें।"

लोक स्रष्टा ब्रह्माजीको सृष्टि रचनाके कार्यसे एक क्षणको भी अवकाश नहीं। उनका सङ्कल्प ही प्राणियोंका सर्जन करता है। तनिक चित्त इधर-से-उधर हुआ और फिर तो कुछ ठीक नहीं कि संसारमें कैसा अटपटा जीव आ धमकेगा। किसीके मुख नाकके छिद्र नहीं, किसी मानव शिशुके सिरपर नेत्र या सींग—सृष्टि करने वालेका प्रमाद क्या करेगा, कौन कह सकता है। इसीसे ब्रह्माजी सदा सावधान रहते हैं। दूसरे किसी झमेलेमें नहीं पड़ते। लेकिन अब अपने पुत्रोंको क्या करें। पुत्रोंको शिक्षा न

दें तो पिताके कर्त्तव्यसे च्युत होनेका दोष लगे। इसपर ये नारदजी तो अपने उन वृद्ध पितासे कुछ-न-कुछ पूछते ही रहते हैं। ये हृदयसे उत्पन्न होनेके कारण हैं भी पिताके सबसे प्रिय पुत्र ; लेकिन आज ब्रह्माजी सर्वदाकी भाँति प्रसन्न नहीं जान पड़े। उन्होंने अपने पीछे श्वेत चामर लिए श्वेत वसना प्रतिभाकी अधिदेवी सरस्वतीकी ओर देखा तनिक मुख उठाकर। सङ्कोचसे वे सत्वमयी जैसे सिकुड़ गयी हों।

'तुम भगवान विष्णुके पास जाओ या शंकरजीके पास !' सृष्टिकर्ताने देवर्षिको स्वर संकेतसे ही वता दिया कि योग्य पुत्र पिताको ऐसे विषयमें संकोचमें नहीं डाला करते।

'श्री मन्नारायण नारायण नारायण।'

देवर्षि नारदको क्षीर सागर पहुँचनेमें देर कितनी लगती थी। खड़ाऊँ खटकी, वीणाके तारोंमें झंकार उठी और भगवन्नामकी ध्वनिमें नारदजीको पता क्या लगता था कि क्षीर सागर कितनी दूर है। वीणा दुग्धकी लहरियोंपर स्थिर हो गयी ! खड़ाऊँ दूर तरङ्गोंपर अचल छोड़ दी गयी। साष्टाङ्ग करते-न-करते परम पुरुषने उठाकर हृदयसे लगा लिया उन्हें। भगवती लक्ष्मीने वीतरागके चरणोंमें मस्तक झुकाया। वड़ी नम्रतासे देवर्षि बैठ गये।

'नारद जी, यदि आकाशके छोरका आप मुझे पता बता देते !' ये दूधके समुद्रमें स्फटिकोज्वल महाभोग सहस्र शीर्षा शेषकी शय्यापर सदा आधे लेटे रहनेवाले नवनीरद श्याम देवता बड़े विचित्र हैं। कोई आवे किसी

कामसे, ये बिना कहे सुने ही उसको उत्तर दे देंगे और देंगे भी ऐसे विनोदसे कि वह भी स्मरण रखे।' परोक्ष-प्रिय ये पुरुषोत्तम पहेली बुझाना भली प्रकार जानते हैं।' देवर्षि नारद स्वस्थ बैठ गये। अब उन्हें कुछ पूछना था; किन्तु कुशल प्रश्नको भी अवकाश दिये बिना इन रमाकान्तने एक अनुरोध प्रारम्भ कर दिया।

'आकाशका ओर छोर?' देवर्षि बीचमें ही चौंक बोल पड़े—'सो तो प्रभु वह आपमें ही है। आप ही उसके बाहर भीतर सर्वत्र व्याप्त हैं। उसके ओर छोर आप ही हैं।'

'आप तो स्तुति करने लगे!' मन्द स्मित आया उन योग मायाके अधीश्वरके श्रीमुखपर 'मुझे आकाशका विस्तार जानना था।'

'असीमका विस्तार' नारदजीने मस्तक झुकाकर सोचा और उठ खड़े हुये। उनकी शङ्काका समाधान हो चुका था।

× × ×

'मैंने सन्तोंका माहात्म्य पूछा अपने पूज्य पितासे' देवर्षि नारदने कहा। उन नित्य पथिकका दूसरा तो कोई कार्य है नहीं, घूमना, भगवानके नामोंका कीर्तन करना और यहाँ-वहाँ सत्संग करते रहना। शङ्काका समाधान हो चुका तो हुआ क्या। भगवान शिवको सदा पर्याप्त समय रहता है। उन्हें न सृष्टिके बखेड़ेसे काम, न पालनसे। प्रलयका समय जब आवेगा तब डमरू लेकर

कुछ क्षण (अपने क्षणोंसे) आनन्दमें ताण्डव नृत्य कर लेंगे वे। वैसे तो सदा भगवत् चर्चा, सत्संग या फिर सौ पचास कल्पों तक भगवती पार्वतीको तनिक घूमने टहलनेको छोड़कर समाधि-–भोले बाबाको करना भी क्या है। अतएव देवर्षि प्रायः कैलाश आते-जाते रहते हैं। अब सन्त महिमा न सही, सन्तचर्चा तो गंगाधर करेंगे ही, इसलिए वे आगये कैलाश। भगवान विश्वनाथने अङ्क माल दी उन्हें। श्रीगिरिजाको उन्होंने अभिवादन किया। चारों ओर उत्तुंग उज्ज्वल हिमशृङ्गोंके मध्य उस एक योजन विस्तृत सघन वट वृक्षके नीचे शार्दूल चर्मपर आशुतोषके समीप बैठकर देवर्षिने अपना प्रश्न तथा क्षीर सागर तक यात्राका समाचार सुना दिया।

'आप किसीसे विनोद करनेमें हिचकते नहीं!' नीलकण्ठ प्रभुने हँसते हुए उलाहना दे दिया। बात ठीक ही थी, भगवान ब्रह्मा एवं भगवान पुरुषोत्तमसे भी इस प्रकारके प्रश्नको धृष्टता ही तो कहा जायगा। 'आपने स्वयं अपने भक्ति सूत्रमें बताया है कि सन्त स्वयं परम पुरुषके स्वरूप, उनसे अभिन्न होते हैं। असीम आकाशका ओर-छोर तो मिल भी जाय, पर आदि अन्त रहित भूमा पुरुषकी महिमाका पार हो सकता है?'

'हम सभी जानते हैं कि सर्वेश्वर प्रभुकी महिमा अपार है; किन्तु हम अपनी वाणीको सार्थक करनेके लिए सदा उसीका वर्णन करते हैं।' देवर्षिने भगवान गंगाधरके उत्तरमें-से अपने लिए मार्ग निकाल लिया। जब भगवान-की महिमाका वर्णन किया जाता है तो उनसे अभिन्न

सन्तोंकी महिमाका वर्णन ही करना ब्रह्माजीने क्यों अस्वीकार कर दिया, यह देवर्षिका तर्क स्वाभाविक ही था।

'दया-धाम करुणा-वरुणालय प्रभुके अवतार नित्य हैं। शास्त्र उनकी ही वाणी है, उनका ही शरीर है। उन सर्वरूप, सर्वमयके सम्बन्धमें जो भी कहा जाय वह सत्य ही है।' भगवान शंकरने बड़ी स्निग्ध वाणीमें समझाया 'लेकिन उन सर्वेश्वरसे अभिन्न रहते हुए भी सन्तोंकी बात दूसरी है। उनके भावकी कोई निश्चित सीमा नहीं। उनके भाव कैसे होंगे, सो भी निश्चित नहीं। उनके असीम प्रभावशाली भावमें निष्ठा भेद, प्रकार भेद आदि तो होता ही हैं। सन्तके स्वभाव, आचार आदिमें भी भेद होता है। भक्तापराधको भगवान भी क्षमा नहीं कर पाते। स्वयं प्रभु भी इस भाव भेद युक्त असीम सन्त माहात्म्यको कहनेमें इसीलिए संकुचित होते हैं।'

देवर्षिने सजल नेत्र भगवान शङ्करके पदोंमें मस्तक झुकाया। उनकी वीणा झंकृत होने लगी।

× × ×

'भैया जिसके विषयमें भगवान ब्रह्मा सर्वेश्वर पुरुषोत्तम प्रभु एवं योगीश्वर नीलकण्ठ भी कुछ कहनेमें सङ्कोच करते हैं....' बड़े स्नेहसे उन महापुरुषने अपने शिष्यको समझाना चाहा। शिष्यमें श्रद्धा है, सेवा है, विश्वास है। इतना होकर भी उसका स्वभाव कुछ आग्रही

है। आज वह गुरुदेवसे सन्त महिमा सुननेका हठ कर रहा था।

'भगवान आप बड़े दयालु हैं। मुझे क्लेश होगा इसीलिए आपने यह नहीं कहा कि मैं सन्त माहात्म्य सुनने-का अधिकारी नहीं हूँ।' शिष्य कैसे मान ले कि उसके सर्वज्ञ गुरुदेव किसी विषयके उपदेशमें असमर्थ भी हो सकते हैं।

'तुम पहिले मेरा एक काम करदो!' गुरुदेव भगवती भागीरथीके तटकी ओर देख रहे थे। कुछ पद चलकर उन्होंने तनिक रेत हटाकर एक अद्‌भुत प्रकाशमय लाल पत्थर निकालकर शिष्यके हाथपर धर दिया। इसे नगरमें ले जाओ। सामने जो शाक-सब्जीकी दूकान है, उसके कुंजड़ेसे इसका मूल्य तथा गुण पूछते आओ। इसे बेचना नहीं है। इतना उसे बता देना कि यह लाल है।'

आज्ञाकारी शिष्यने पत्थर ले लिया। वे नगर पहुँचे। उन्होंने कुंजड़ेके हाथपर उसे रखकर कहा—'इसका गुण और दाम क्या है?'

'बड़ा सुन्दर पत्थर है यह।' कुंजड़ेने उलट-पलट कर देखा। वह पत्थरकी चमक और चिकनाहटपर मुग्ध हो गया।

'यह लाल है। इसका गुण और मूल्य?' उस युवक साधुने अपना प्रश्न दुहराया। उसे खेद हुआ कि जो पत्थरको पहिचानता ही नहीं, वह भला गुण और मूल्य क्या बतावेगा।

'यह लाल है?' कुंजड़ा एक दम सीधा बैठ गया। उसने आँखें फाड़कर साधुको और फिर पत्थरको देखा। फिर देखा—'अवश्य यह लाल ही है। महाराज! आपकी कृपासे मैंने आज लाल देख लिया। नहीं तो मेरे पिता पितामहने भी न देखा होगा लाल। मैं क्या जानूँ इसका मूल्य और गुण। इसे तो कोई रत्नपारखी जौहरी जानता होगा। मैं तो आलू, गोभी, मूली, कुम्हड़े आदिका मूल्य जानता हूँ और कुछ-कुछ इन शाकोंके गुण भी।' बड़ी श्रद्धासे पत्थरको सिरसे लगाकर उसने साधुको लौटाया। वह बहुत हठ कर रहा था कि जब साधु उसके यहाँ आये, कृपाकर लाल दिखाया तो एक दो गोभीके अच्छे फूल, दो एक लौकियाँ, थोड़े आलू तो वे भेंट रूपमें स्वीकार कर ही लें; किन्तु साधुको तो कुछ लेना था नहीं।

× × ×

'सेठजी, इसका क्या मूल्य होगा? क्या गुण हैं इसमें?' जब कुंजड़ा न बता सका तो जौहरीसे पूछना चाहिये, यह सोचकर साधु पहुँच गये नगरके सबसे बड़े जौहरीकी दूकानपर। एक साधुको देख जौहरीने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और कदाचित कुछ देनेके लिए सन्दूक खोलने जा रहा था कि उस पत्थरको देखकर वह कुंजड़ेसे भी अधिक चौंक पड़ा।

'आपने कहाँ पाया यह? कुछ क्षण तो जौहरीसे बोला ही नहीं गया। उसने पत्थरको देखा और देखता

रह गया। फिर साधुको ध्यानसे देखने लगा वह। मानो पत्थरकी अपेक्षा भी लाने वाला अद्भुत लगा हो उसे।

'यह लाल है। मेरे गुरुदेवने दिया है इसे। वेचना नहीं है। मूल्य और प्रभाव ही जानना चाहता हूँ।' साधुने अपने गुरुदेवका परिचय दिया।

'आपके गुरुदेवने दिया है! वे महापुरुष हैं, उनके लिए किसी पत्थरको लाल बना देना सरल है।' जौहरीने हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया। उस श्रद्धालुने पत्थर लौटा दिया साधुको। 'महाराज, इस समय संसारमें माशेमें तौलने योग्य माणिक भी नहीं मिलता। लालका तो सब नाम ही जानते हैं और आप यह आधी छटांकका लाल ले आये हैं। इसका मूल्य और इसका गुण तो संसारका कोई जौहरी सोच भी नहीं सकता।'

× × ×

'इसका मूल्य मैं जानता हूँ। गुरुदेव शिष्यसे पत्थर लेकर तनिक मुस्कराये—'यह एक पत्थर है और इसका सबसे अच्छा उपयोग यह है।' उन्होंने उसे घुमाकर गङ्गाजीकी बीच धारामें फेंक दिया।

'आपने अमूल्य रत्नको……।' शिष्यके मुखसे पूरी बात भी निकलनी कठिन हो गयी।

'अनर्थोंका जो मूल है, उसीको संसारासक्त लोग अर्थ कहते हैं।' गुरुदेवने शिष्यकी ओर देखा। 'बहुमूल्य-का अर्थ हुआ बहुत अधिक अनर्थोंका हेतु और तब उसका इससे अच्छा क्या उपयोग होगा कि उसे भगवती

सुरसरिकी धारामें विसर्जित कर दिया जाय। तुम्हें सत्पुरुष करनेकी आवश्यकता है, पत्थरकी आवश्यकता नहीं।'

'सन्तोंकी महिमा....' शिष्य अपने पहले प्रश्नपर आ गया। उसका चित्त स्वस्थ हो चुका था।

'सन्तोंके जो ठीक परीक्षक एवं स्वरूप हैं वे त्रिदेव भी जिनकी महिमाका वर्णन नहीं कर पाते, वहाँ मेरी क्या गणना है? गुरुका कण्ठ आर्द्र हो गया। 'मैं तो उस कुंजड़ेके समान हूँ।'

'भगवन्, मुझे क्षमा करें!' विह्वल शिष्यने अपने गुरुदेवके चरणोंमें मस्तक रख दिया। उसके सम्मुख वे अवर्ण्य महामहिम सन्त हैं, इस अनुभूतिने उसके हृदयको आप्लावित कर दिया था।

समचित

वन्दउँ सन्त समान चित, हित अनहित नहि कोउ।
अंजलि गत सुभ सुमन जिमि, सम सुगन्ध कर दोउ॥

लोग कहते हैं कि वे पागल हैं। मैंने नगरोंके पंथोंपर नंग-धड़ंग घूमनेवाले पागल देखे हैं, बड़बड़ाते चले जानेवाले और फिर चाहे जिधर लौट पड़नेवाले पागल देखे हैं, ढेरों चिथड़े तथा कूड़ा-कर्कट समेटते चलनेवाले पागल देखे हैं, गालियाँ देनेवाले और लोगोंपर पत्थर फेंकने वाले पागल एवं गुमसुम रहने वाले पागल भी देखे हैं; किन्तु यदि वे पागल हैं, उनसा पागल किसी देशके पागल चिकित्सालयोंके अध्यक्षने भी न देखा होगा।

पागल चाहे जैसा हो, उसके नेत्र अद्भुत कुछ गोलाईसे लिये, कुछ विभ्रान्तसे, कुछ घूर्णितसे रहेंगे। उसके मुखपर एक रुक्षताका भाव रहेगा। उनके विशाल सुन्दर नेत्रोंमें बालककी सरलता और माताका स्नेह साकार हो गया है, उनके नेत्र जैसे स्नेह और शान्तिकी वर्षा करते हैं। उनका सुन्दर मुख नित्य प्रसन्न, कुछ गम्भीर-सा एक रस बना रहता है और वे एक जैसे अपनी मत्तगत्तिसे जैसे किसी दूसरे ही आनन्द लोकमें हों, घूमते रहते हैं।

वे किसी रोते बच्चेको पुचकारने लगेंगे और बच्चा उनको देखते ही हँस न पड़े, यह तो कभी नहीं हुआ।

वे किसी लंगड़ाते कुत्तेके पिल्लेकी देहमें लगा कीचड़ छुड़ाने लगेंगे या किसी घूमती गाय या साँड़के गलेमें हाथ डालकर उससे स्नेह व्यक्त करने लगेंगे। दुखियों, पीड़ितों, अनाश्रितोंके लिए उनका सौहार्द्र सदा उमड़ा पड़ता है, चाहे वे पीड़ित मनुष्य हों या मनुष्येतर प्राणी। इसीसे लोगोंने उन्हें पागल समझ लिया है।

लोग उन्हें पागल कहतें हैं, क्योंकि वे भी जाड़े, गर्मी, वर्षामें बिना किसी वस्त्रके चाहे जहाँ नंगे पड़े रहते हैं। उनका भी न कोई रहनेका स्थान है और न गन्तव्य। उनके शरीरमें गोवर लगा है या कीचड़ इसका उन्हें पता नहीं रहता। उन्हें बच्चे कभी फल दे देते हैं और कभी फलोंके छिलके, कभी कोई अच्छे भोजन दे देता है, कभी सूखी गन्दी-सी रोटीका टुकड़ा और उन्हें किसी पदार्थके स्वादका पता ही जैसे नहीं लगता।

उन्हें किसीने कुछ माँगते नहीं देखा। कोई कुछ पूछे तो तनिक मुस्कराकर आगे चल देंगे। उनके ओष्ठ हिलते रहते हैं, पता नहीं क्या कहते रहते हैं वे; लेकिन उनको वोलते देख लेना कठिन ही रहा है अब तक। वे नगरकी अपेक्षा गङ्गाजीके तटपर एकान्त खेतोंकी ओर ही अधिक रहते हैं। नगरमें तो उन्हें वच्चे कभी-कभी घेर लाते हैं। उन्हें कोई कुछ भी दे, भोजन तो वे बहुत थोड़ा ही लेते हैं। सम्भवतः पेट भर जानेपर वे लेना बन्द कर देते हैं।

उस दिन मुझे लगा कि सम्भवतः वे पागल ही हैं। एक बिल्ली खेतमें मूर्छित पड़ी थी। उसे सम्भवतः साँपने

काट लिया था। वे कुछ उसकी नाकसे बार-बार लगाते थे। औषधि लगानेसे बिल्ली सहसा चेतनामें आती थी, अर्ध चेतनामें बौखलायी-सी पंजे मारती और फिर मूर्छित हो जाती। उसने अपने नखोंसे उनके हाथ, पैर खरोंच डाले थे, लेकिन वे लगे थे उसे वह जड़ सुँघानेमें। मैं जानता था कि मेरा मना करना ये सुननेसे रहे। खड़ा देखता रहा। अन्तमें बिल्ली उठी, सम्हली और भाग गयी। वे उसे देखते रहे। उनके मुखपर वही मुस्कराहट आयी और एक ओर चल पड़े। उनके हाथों पैरोंकी खरोंचे, निकलते रक्तने उन्हें भिगा दिया है, इसका जैसे उन्हें पता ही नहीं।

आजकल एक हलवाईकी श्रद्धा उमड़ पड़ी है। वह कहता है कि वे महात्मा हैं। उनकी बात झूठी है, यह कहनेका साहस मैं अपनेमें नहीं पाता। हलवाई उन्हें इधर-उधरसे ले आता है बार-बार। उनके लिए एक कमरेमें सुकोमल गद्दा डाल रखा है तख्तेपर। उन्हें स्वस्छ वस्त्र पहिनाता है। चन्दन, पुष्प, माला आदिसे उनकी पूजा करता है। उनके लिए नाना प्रकारके नैवेद्य प्रस्तुत होते हैं और वे हैं, जैसे मन्दिरोंके देवता हों। आजकल उनकी धूमधामसे पूजा होती है, बस इतना ही। इस पूजा और भोगमें भी उन्हें कुछ रस हो, ऐसा उनके मुख एवं व्यवहारको देखकर कहना कठिन ही है।

× × ×

'तू यहाँसे भाग जा, नहीं हड्डियाँ तोड़ डालूँगा। वह गालियाँ बक रहा था। हाथके डण्डेसे धड़ा-धड़

किसीको पीट रहा था। वहाँ एक छोटे बच्चेके रोनेका शब्द भी था। मैं जानता हूँ कि यह पक्का सुरापो है। जब पीकर आता है, अपनी सीधी पत्नीको अकारण क्रूरता-पूर्वक पीटता है। लेकिन इसकी पत्नी इस प्रकार शान्त तो नहीं रहती। वह तो रोती है, चिल्लाती है तब क्या मूर्छित हो गयी वह? यह दुष्ट कहीं बच्चेको ही न मारे डालता हो। मैं शीघ्रतापूर्वक पास पहुँचा।

अब वे पागल हों या महापुरुष, पर हैं विचित्र धुनके। वह बेचारा हलवाई इन्हें इधर-उधर ढूंढ़ता भटक रहा था और ये पता नहीं कब कैसे यहाँ पहुँच गये। मदान्ध शूद्र डण्डेसे इन्हें पीटता जा रहा है इस प्रकार जैसे किसी पत्थर या लकड़ीको पीट रहा हो। भुजाओंपर, पीठपर मोटी-मोटी काली धारियाँ उभड़ आयी हैं और ये हैं कि इन्हें इस मारकी ओर ध्यान देनेका अवकाश ही नहीं। उसी मारनेवालेके बच्चेको गोदमें लिए, छिपाये, उसे सम्हाल रहे हैं। लड़केकी नाकसे रक्त जाता दीखता है। पिताके मारने या गिरनेने उसकी नाक फूट गई है और इन्हें उसकी नाकका रक्त बन्द करनेके ध्यानमें अपने शरीरपर पड़ती चोटका पता ही नहीं है।

'तू यहाँसे भाग जा।' शूद्रने डण्डा फिर उठाया। उसके मुखसे दुर्गन्धि फटी पड़ती थी। मैंने पीछेसे डण्डा झटका देकर छीन लिया। आवेशसे शूद्र मेरी ओर मुड़ा ही था कि एक डण्डा जड़ दिया मैंने उसे क्रोधमें। वह मेरे पैरोंपर गिरकर गिड़गिड़ाने लगा। अब उन्होंने मेरी ओर मुख किया। उनके नेत्रोंमें जो उलाहनेका भाव था, उसे सहलेना सम्भव नहीं था मेरे लिए। मैंने डण्डेको

दूर फेंक दिया। शूद्रकी स्त्री कहीं बाहर गयी थी। माताको आते देख बच्चा दौड़ गया उसके पास और वे उठकर इस प्रकार एक ओर चल पड़े जैसे यहाँ किसीसे कुछ सम्पर्क ही नहीं उनका। अपनी चोटोंका तो उन्हें पता ही क्या लगना था।

× × ×

'रामदीन, तुम्हें भी क्या सनक है उस पागलके पीछे पड़े हो।' मेरे सामने ही एक सज्जनने उस साधु सेवी हलवाईको बड़ी ही समझदारी दिखाते हुए सहानुभूति पूर्वक समझना चाहा—'तुम्हें क्या लाभ हुआ उसकी सेवासे। सुना है कि आजकल तुम्हारा व्यापार भी ठीक नहीं चल रहा है और वह तो तुम्हारी सेवा सत्कारको समझने योग्य भी नहीं है। इससे तो अच्छा होता ...।'

पता नहीं क्या-क्या कहना था उन्हें; किन्तु रामदीनको वह सब सुननेका अवकाश नहीं था और न इतना धैर्य था उसमें। बड़ी नम्रतासे उसने कहा—'वे पागल हों या महात्मा, उन्होंने मेरे लड़केको मरनेसे बचाया है। मैं उनकी सेवा व्यापारमें लाभ या और किसी लाभके लोभसे नहीं करता। मेरे भाग्यमें होगा, उतना ही मुझे मिलेगा।'

मुझे पता है कि रामदीनके एक ही पुत्र है। अकेली सन्तानपर पिता-माताका ममत्व एकत्र हो उठता है। मैंने यह भी सुना है कि बाजारमें एक दिन दो लड़ते साँड़ोंकी चपेटमें वह लड़का आ गया था। पता नहीं कहाँसे

वही पागल आ गया और दौड़ता हुआ लड़केको उठाकर भाग निकला। उसे बहुत थोड़ी चोट लगी, लेकिन बच्चेकी जान बच गयी।

'उनका तो स्वभाव है यह।' मैंने रामदीनको बतलाया कि किस प्रकार शूद्रके बच्चेको वे सम्भाल रहे थे और वह शूद्र उन्हें मार रहा था।

'वे कहाँ हैं? किधर गये?' रामदीन आतुर हो उठा। मैं उसकी उत्सुकताको समझ न सकूँ, ऐसी बात नहीं। इस गये-गुजरे समयमें भी ऐसे उदार कृतज्ञ लोग हैं ही। मैं चल पड़ा रामदीनके साथ उन महापुरुषका अन्वेषण करते।

'महाराज, आप मुझपर कृपा करें!' एकान्तमें एक दिन मैं उस पागलसे लगनेवाले सन्तके समीप गया। मुझे आज निश्चय कर लेना था कि वे पागल हैं या साधु और अब मुझे यह कहनेमें कोई सङ्कोच नहीं कि यदि वे पागल हैं, तो ऐसे त्रिलोकीके आभूषण भूत पागलके चरणोंका स्पर्श पानेवाली धरा धन्य है।

उन्होंने केवल मेरी ओर देखा। उस दृष्टिमें कितना स्नेह था यह कहना कठिन है। सम्भवतः वे बोलते नहीं। उनके हिलते अधरोंकी क्रियामें बाधा न पड़े, इसलिए बोलना बन्द कर दिया होगा उन्होंने। उनकी दृष्टि कह रही थी—'तुम क्या चाहते हो'

'मैं कुछ चाहता नहीं, केवल जानना चाहता हूँ।' मैंने नम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया। उनके

अधरोंपर जो मन्दस्मित आया वही मेरे लिए अपनी बात कहनेकी अनुमति थी । 'आपने उस नोचनेवाली बिल्लीको जीवन दिया, उस पीटनेवाले शूद्रके बच्चेको स्नेह दिया और इस सेवा करनेवाले रामदीनके पुत्रकी प्राण रक्षा की, यह तो कोई विशेषताकी बात न हुई। वह शूद्र भी क्या रामदीनके समान ही आपकी कृपाका अधिकारी है ? सच्ची बात यह है कि रामदीनकी सेवा तत्परता एवं भावने मुझे प्रभावित किया था, मैं उसकी ओरसे उसके अनजानमें ही प्रार्थना करनेकी बात कई दिनोंसे सोच रहा था ।

वे खुलकर हँस पड़े। बालकोंकी भाँति इस प्रकार उनका यह उन्मुक्त हास्य आज पहिली बार मुझे देखनेको मिला और पहिली बार उन्होंने कदाचित मुझे ही इस योग्य माना कि अपने पागलपनका नाटक न करके कोई सङ्केत करें। उन्होंने मुझे वहीं रहनेका सङ्केत किया और एक ओर चले गये। मुझे अब प्रतीक्षा करनी थी।

'पता नहीं क्या देखनेको मिलेगा।' मैं जानता हूँ कि ऐसे सन्त कोई भी चमत्कार दिखा सकते हैं। अब उन्हें बोलना नहीं है तो मेरे प्रश्नका उत्तर वे किसी चमत्कारके रूपमें दें, यह सहज सम्भाव्य है। मैं पूरा उत्सुक हो उठा उस अज्ञात चमत्कारके प्रति।

'वे आवेंगे भी या नहीं ? पर्याप्त विलम्ब होनेपर मैं घबड़ाने लगा। इस प्रकार काम-धाम छोड़कर एक खेतकी मेंड़पर बैठे रहना किसी भी नागरिकको प्रिय नहीं हो

सकता। वे नगरकी ओर चले गये थे और मैं उनके आनेके मार्गकी ओर दृष्टि लगाये बैठा था। कब तक इस प्रकार प्रतीक्षा करता। उन्हें सम्भवतः स्मरण भी न होगा कि मैं यहाँ बैठा उनकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।' मुझे अपनेपर ही झल्लाहट आने लगी। एक पागलके संकेतपर मैं व्यर्थ यहाँ अपना समय नष्ट कर रहा हूँ।

'वे आरहे हैं।' आप मेरी उत्सुकताका अनुमान कर सकते हैं। मैंने दूरसे उन्हें देख लिया था। खड़ा तो कबसे था। वे वैसे ही नङ्ग-धड़ङ्ग अपनी अलमस्त चालसे चले आ रहे थे। लेकिन उनके हाथोंमें कुछ था। उनके हाथोंकी अंजलि बनी हुई थी। मैं दूरसे ही यह जाननेको और उत्सुक हो उठा—'क्या है वह ?'

उन्हें देर होनी ही चाहिये थी। लवंगलताके नन्हें-नन्हें पुष्प एक अंजलि भरकर चुन लेना दस-पाँच मिनटका काम तो है नहीं। वे आये और सुरभित पुष्पोंको उन्होंने मेरे सिरपर उड़ेल दिया। अब अपना दाहिना हाथ इस प्रकार मेरे मुखके पास कर दिया कि मैं उसे सूँघलूँ। वह मधुर मोहक सुरभि नासिकासे मस्तिष्क तक आप्लावित-सी कर गयी। दूसरी वार भी मैंने श्वांस खींचकर सूँघा उस सुगन्धिको। इस बार उन्होंने अपना बाँया हाथ मेरी नासिकाके समीप कर दिया था। फिर वे खुलकर हँसे और चल पड़े एक ओर।

मुझे कुछ क्षण लगे। 'यह मेरे प्रश्नका उत्तर है ?' कुछ क्षण मैं सोचता रहा। मेरी दृष्टि भूमिमें बिखरे उन

नन्हें मृदुल कुसुमोंपर गयी। अब भी वे वायुको सुरभित कर रहे थे। 'इनका काम विश्वको सुरभिका दान करना है। दक्षिण या वाम (अनुकूल या प्रतिकूल) का भेद ये नहीं करते। जो इनके सम्पर्कमें आता है, उसीको इनसे सुरभि प्राप्त होती है।'

अब कहने या समझनेको रह क्या गया। 'सुमन-सा मृदुल, उज्ज्वल, सुरभिमय चित्त है, वे सर्वत्र समदर्शी ही तो सन्त हैं। उन समचित्त महापुरुषोंके लिए कौन हित और कौन अहित। उनका तो काम है अपने सम्पर्कमें आनेवालेको अपनी अपार दया, स्नेह एवं शान्तिकी सुरभिसे परिप्लुत कर देना।' मैंने भूमिमें मस्तक रखकर वहींसे उन महापुरुषको प्रणाम किया और उनके प्रसाद भूत पुष्पोंको एक-एक कर चुनने लगा।

सन्त-बन्दन

संत सरल चित जगत हित, जानि सुभाउ सनेहु।
बाल विनय सुनि करि कृपा, राम चरन रति देहु ॥

'अब आप लोग रात्रिमें यहीं रहें !' उन्होंने बड़ी सरलतासे आग्रह किया—'श्रीहनुमानजीकी कृपासे प्रसादका प्रबन्ध तो हो ही जायगा। आज मुझे भी कथा सुननेको मिलेगी।' हमारे साथियोंमें एक अयोध्याजीके विद्वान रामायणी हैं। उनका परिचय पाते ही कथाके लिए प्रस्ताव कर दिया था उन्होंने। वैसे हम सब रात्रिको यहीं रहें, यह आग्रह तो वे परिचयसे भी पहिलेसे कर रहे थे।

'हम लोग इस समय अनुसूया (अत्रि-आश्रम) जानेका विचार करके चले थे।' मेरे साथके रामायणीजीने उनसे बताया। 'आप मार्ग बता दें तो कृपा होगी। अब तो पास ही होगा।'

होनेको तो पास ही है। यहाँसे लगभग आध कोस ऊपर-ऊपर जाकर उतरनेका मार्ग है। उतरनेपर वह जो पर्वत दीखता है सामने, उसके पीछे दीखनेवाले शिखरपर ही नीचे आत्रि मुनिका आश्रम है। यहाँसे सब मिलाकर दो या ढाई मील होगा।' पूरा मार्ग दूरी आदि बताया

उन्होंने हाथका सङ्केत करते हुये। 'लेकिन अब दिन डूबनेमें बहुत कम देरी है। आप लोग चलकर आये हैं। आज यहीं आसन लगावें तो उत्तम होगा।'

सूर्यास्त होनेमें एक घण्टेसे भी कम समय शेष रह गया था। इधर दिन डूबते ही तेंदूए, चीते, शेर निकल पड़ते हैं। इस बनमें उनकी बहुलता है। आज प्रातःकी यात्रामें हम लोगोंको क्रमशः चीता, काला चीता और रीछका बच्चा मिल चुके थे। पहिला चीता इतने निकट मार्गके नालेमें पोपलकी जड़के समीप लेटा हुआ मिला कि वह केवल पंजे उठाकर हमें छू सकता था। हम उससे एक गज दूर थे। लेकिन वह पेट भरकर गायकी भाँति पैर फैलाकर लेटा था। उसने केवल सिर उठाकर देख भर लिया था। शेष दोनों भी बारी-बारीसे मिले थे सौ गजके भीतर ही। अब सायंकाल बनपशु मिलें, यह भयङ्कर बात थी। इस समय वे भूखे होते हैं। आहारकी खोजमें निकलते हैं। इतना होनेपर भी इस छोटेसे मन्दिरमें जो मूर्ति होनेसे ही मन्दिर है, अन्यथा ५-७ मनुष्य बैठ सकें, इतने स्थानका बरामदेकी भाँति कटी पर्वतकी खड़ी दीवाल मात्र है, इसमें भी दो अतिथि पहिलेसे विद्यमान हैं और हम तीन बढ़ जाँय यह मुझे अच्छा नहीं लग रहा था।

'हम दिन डूबते-डूबते पहुँच जायेंगे। अभी नीचेके विराध कुण्डके समीपवाले गाँवमें ही दोपहरीमें थे।' रामायणीजीकी इच्छा भी रुकनेकी नहीं थी। यहाँ कोई ग्राम तीन चार मीलसे कम दूर नहीं है। ये साधु इतनी

दूर जाकर भिक्षा लाते होंगे। तीन दिनसे दो अतिथि अपने यहां रोक रखे हैं उन्होंने। यद्यपि हम लोगोंके साथ भोजनादिकी सामग्री आटा, घी, शाकादि सब है और उसीको ले चलनेके लिए हम एक मजदूर सङ्ग लाये हैं; किन्तु यहाँ ठहरनेका स्थान कहाँ है। स्वयं यहाँके ये सन्त तो बाहर शिलापर धूनी लगाये हैं। दूसरी बात यह कि यदि हम आज अनुसूया नहीं पहुँचते तो आगेका कार्यक्रम पूरा एघ दिन पिछड़ जायगा। अनुसूयासे गुप्त गोदावरीके लिए प्रात:काल चलना ही ठीक है। वह यात्रा मध्याह्नोत्तरके योग्य नहीं। हम इसलिए भी रात्रि अनुसूयामें व्यतीत करनेका निश्चय कर चुके थे। कार्यक्रम बनाकर उसे बदल डालना मेरे लिए सदा कठिन रहता है।

'आप लोग जैसा करनेमें प्रसन्न हों।' उन सन्तकी भाषा, भाव भङ्गी, सबसे सरलता टपक रही थी। 'मेरी इच्छा तो थी कि रात्रिमें मुझे कुछ श्रीरामचरित सुननेको मिलता।' उन्हें यह कहनेमें भी सङ्कोच हो रहा था कि आप लोगोंके कष्टका ध्यान करके ही मैं यहाँ रुक जानेका आग्रह कर रहा हूँ।

अब यहाँ वे कठिनाइयाँ बतानेकी आवश्यकता नहीं है, जो हमें मिली। हमने सन्तका आग्रह न मानकर यात्राकी। सूर्य आधे मार्गसे भी पहिले डूब गये। हम मार्ग भूलकर भटक गये उस घोर बनमें। अन्धकार हो गया। वह तो उन सन्त की, अत्रि काननके नित्य अधिष्ठाता महर्षि अत्रिको अलक्ष्य कृपा थी की हमें

मार्ग बतानेवाले मिल गये। किसी प्रकार रात्रिमें आठ बजे तक अत्रि आश्रम पहूँच सके हम लोग।

× × ×

हमने निश्चय किया था कि चित्रकूट क्षेत्रकी पैदल यात्रा करना। मेरे साथी रामायणीजी भी समान ही ठहरे। साथमें एक मजदूर सामान तथा बर्तन लेकर हमारी यात्रा प्रारम्भ हो गयी। हम मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम जिस मार्गसे चित्रकूटसे आगे गये थे, उस मार्गसे चित्रकूटकी ओर आ रहे थे। यात्राके प्रथम और द्वितीय दिन तो सामान्य रहे। द्वितीय दिन हम मध्याह्नसे पूर्व ही शरभंग आश्रम पहुँच गये थे और रात्रि वहीं व्यतीत हुई। तीसरे दिन घोर वन मिलना था, हमने रात्रिका अन्धकार दूर होनेसे पूर्व ही चन्द्रमाकी ज्योत्स्नाके बलपर यात्रा कर दी। ऐसी अवस्थामें यदि वनपशु हमें मार्गमें मिले तो दोष हमारा ही था।

मध्याह्न विश्राम विराध कुण्डसे एक मील पहिले ही एक ग्राममें हुआ था। एक पथ दर्शक ले लिया था हमने ग्रामसे, क्योंकि कोई भी परिचित उन कंटीली झाड़ियोंसे भरे बनमें भूमिके सर्वथा बराबर, किसी चिह्नसे रहित विराध कुण्डको ढूंढ़ लेनेकी आशा नहीं कर सकता। हमारे मार्ग दर्शकको भी कुण्डके समीप आकर दस पन्द्रह मिनट लगा उसे ढूँढ़नेमें। रामायणीजी इधरसे एकाध बार संयोगवश चित्रकूट गये हैं। उनका मार्गज्ञान अधूरा नहीं कहा जा सकता, पर ये वन, इनमें बनी बैल-गाड़ियोंकी लीकें, तृण-धूलहीन चट्टानोंपर किसी पगदण्डीके चिह्नोंका भी बन न पाना, ये ऐसी बात हैं

कि किसी परिचितको भी पथ-भ्रान्त कर देती हैं। हमने भूल यह की कि विराधकुण्ड देखनेके पश्चात् स्थानीय पथ-दर्शकको शीघ्र विदा कर दिया और एक गाड़ीकी लीकके सहारे चल पड़े। कुछ दूर जाकर स्पष्ट हो गया कि यह लीक कहीं गेरू या रामरजकी खदानकी ओर जाती है। उसके द्वारा आगे जाना तो भटकना है। उसे छोड़कर एक पगदण्डी पकड़ी हमने जो कुछ गज जाकर अदृश्य हो गयी।

'अब क्या हो ? किधर चलना चाहिये ?' आप हमारी स्थितिका ठीक अनुमान कदाचित कर सकते हैं। हम एक पहाड़ी भूमिके सपाट शिखरपर थे जो चारों ओर दूर-दूर तक फैला था। उसपर छोटे-बड़े वृक्ष थे। भूमि ऐसी थी कि किसी प्रकारकी पगदण्डीका चिह्न उन पत्थरोंपर वर्षोंमें भी नहीं बनेगा। जिस ओर भी जायँ, यह स्पष्ट था कि एक मीलसे कम ही जा सकते हैं और आगे सीधा खड़ा कटा खड्ड है। मेरे साथी रामायणीजीने बताया कि यहाँसे उतरनेका एक ही मार्ग है।

'मार्ग कहीं पास ही होना चाहिये !' रामायणीजीका अनुमान था तो ठीक ही; किन्तु हमारे सामने प्रश्न यह था कि वह किधर है। यदि हम भूल जायँ—यह बन भयंकर पशुओंसे भरा है और सूर्यास्त होनेमें डेढ़-दो घण्टे ही शेष हैं। अनुसूया पहुँचनेसे पहिले भी मार्गमें कोई ठहरनेका स्थान मिलेगा, यह कल्पना ही नहीं थी। बिना रुके, बिना भटके हम चलें, तभी दिन छिपनेसे पूर्व

'वहाँ आगे कोई तनुष्य जान पड़ता है। हम उससे पूछें।' हमें चार पाँच मिनट ही असमंजसकी स्थितिमें रहना पड़ा। ये छुद्र मिनट भी उस समय घण्टोंसे लग रहे थे, किन्तु अब चिन्ताकी बात नहीं थी। मुझे गेरुये कपड़ेका एक कोना वायुसे हिलता दीख गया था। इधर गेरूकी खानिमें काम करनेवाले मजदूरोंके वस्त्र भी गैरिक ही हुए रहते हैं। हमें कल्पना नहीं हो सकती थी कि यहाँ कोई साधु मिलेंगे।

'कोई सन्त शौचादिके लिए आये हैं।' रामायणीजीको स्मरण आ गया कि इस पर्वतसे उतनेके मार्गमें एक स्थानपर एक जल स्रोत है और वहाँ एक छोटी बरामदे-सी गुफामें श्री हनुमानसीकी प्रतिमा भी है। मैंने भी देख लिया था सन्तका कमण्डल।

'आइते, चलें?' शरीर स्वस्थ, श्यामवर्ण, सुगठित एवं युवा था। मुखपर सरलता थी। मार्ग पूछनेपर वे सन्त स्वयं हम लोगोंको लिवाकर चल पड़े।

'आप शौचादिके लिए आये हो तो निवृत होले, हम प्रतीक्षा करेंगे!' लेकिन उन्होंने बता दिया कि यहाँ यों ही आ गये थे। उसके आसनके पास जाकर तो यह स्पष्ट समझमें आ गया कि शोचादिके लिए इतने ऊपर जानेकी बात सोचना ही व्यर्थ था।

'आप किसी कार्यसे ऊपर आये थे?' मैंने दो-तीन बार पूछा। सन्तके कमण्डलमें जल सदा रहता है। अतएव यह तो कोई विशेष बात नहीं थी। लेकिन मुझे यह खटक

रहा था कि हमें केवल मार्ग बतानेके लिए एक साधु अपना कार्य छोड़कर पीछे लौटें। मैने आग्रह किया—'आप केवल मार्ग बता दें, हम चले जायेंगे!'

'मुझे भी चलना है।' उनके स्वरमें बड़ा सङ्कोच जान पड़ता था,

'हम लोग यहाँ तीन दिनसे हैं। यहाँसे डेढ़-दो मील दूर भटक गये थे ऊपर। उतरनेका मार्ग ही नहीं मिलता था। ये सन्त ही वहाँ मिले और लिवा लाये। अब इनके स्नेहवश रुक गये हैं।' उस गुफामें जो दो साधु पहिलेके ठहरे थे, वे भी हमारी भाँति यात्री थे। उन्होंने बताया कि वे प्रातः जानेका विचार रखते हैं। उनका कहना था—'ये भूले भटके यात्रियोंको मार्ग बतानेके लिए ही घूमते रहते हैं।'

आप मेरे उस समयके भावको भले न सोच पावें, पर सोचिये तो कि वे सन्त उस हिंसक पशुओंसे भरे, फल-पुष्पहीन कंटकवनमें इसीलिए रहते हैं कि वहाँ यात्रीके भटक जानेका सदा भय है। उस बीहड़ बनमें यात्री कहाँ किधर भटक जायगा, कुछ ठिकाना नहीं; किन्तु वे उसके समीप पहुँच जाते हैं। उसे विश्राम ही नहीं देते, उसका यथाशक्ति वहाँ भी तीन-तीन दिन तक आतिथ्य करते हैं।

वे हमें ले आते समय इतने संकुचित क्यों हो रहे थे, अब यह स्पष्ट हो गया था। हम पर उन्होंने कृपा की, हमें ढूँढ़ा, मार्ग दिखाया, यह सब आभार उनके उदारमानस के लिए सह्य नहीं था। वे यही प्रकट करनेके प्रयत्नमें

थे कि वे अपनी इच्छासे यों ही घूम रहे थे और लौटने वाले थे कि हम मिल गये। हमपर कोई दयाकी गयी, वह प्रगट हों यही उनके लिए सङ्कोचका कारण था।

लोकोपकारके आदर्श तो होते हैं, किन्तु सन्त जिस रूपमें उसे सम्पन्न करते हैं, उसके इस स्वरूपको स्मरण करके कौन-सा मस्तक झुकनेमें कपने लिए सौभाग्य नहीं मानेगा।

× × ×

अब आप आज्ञा दें?' हमने अनुसूया जानेका ही निश्चय स्थिर रखा। श्रीहनुमानको प्रणिपात कर लिया गया। अन्तमें आज्ञा माँगी हमने।

'आप लोगोंकी जैसी इच्छा....!' वे बड़े सङ्कोचसे बोल रहे थे। कोई आतिथ्य न करपानेका ही जैसे उन्हें खेद हो रहा हो।

'मैं आपका बच्चा हूँ।' मैंने प्रार्थनाकी। आप उसे शिष्टाचार कहें तो मेरा वस भी क्या है। 'मुझसे कोई साधन नहीं बन पाता। हृदयमें भला स्नेह तो होगा ही कहाँसे। आप कृपा करके आशीर्वाद दें कि भगवानके श्रीचरणोंमें अनुराग हो।'

कौन अपने स्वभाव, अधिकार तथा प्रेमको समझ पाता है। अधिकारकी तो पहिचान सन्तोंको ही होती है। शिशुकी भाँति मुग्ध मनुष्य अपना अधिकार जान कहाँ पाते हैं। सन्त किसकी सरल प्रार्थनापर द्रवित हो जायेंगे, वह कौन बता सकता है। उनके वन्दनीय चरणोंमें प्रार्थना ही की जा सकती है।

'सीता राम।' वे बहुत ही संकुचित हुए। निरभिमान सन्तोंसे यह आशा करना कि वे अपनेको समर्थ मानकर किसीको आशीर्वाद देंगे, दुराशा ही है। उनके दयालु चित्तमें जङ्कल्प भर हो जाय, प्रार्थीके सौभाग्योदयके लिए इतना ही पर्याप्त है।

'जय श्रीसीताराम।' रामायणीजोने उन सन्त तथा वहाँ ठहरे दोनों साधुओंको चलते समयका अभिवादन किया। उन्होंने भी 'सीताराम—दण्डवत महाराज' कर लिया।

'आपसे महत्पुरुषोंके आशीर्वादका ही भरोसा है।' मैं प्रार्थना ही कर सकता था। चलते-चलते मैंने फिर मस्तक झुकाया 'बालककी विनती स्वीकृत होनी चाहिये। आप अपनी उदार कृपासे ही प्रभुके चरणोंका प्रेम प्रदान करें। वे खड़े रहे अपने दयापूर्ण नेत्रोंसे हमारी ओर देखते हुए, जब तक हम दूर न चले गये।

★